श्री वल्लभ स्मारक ग्रंथमाला–२

निग्गंठ नायपुत्त

श्रमण भगवान् महावीर

तथा

मांसाहार परिहार

पंडित हीरालाल दूगड़ जैन

आमुख

आगम प्रभाकर–मुनि श्री पुण्यविजयजी

श्री आत्मानन्द जैन महासभा पंजाब
जैन कार्यालय—अम्बाला शहर (पंजाब)

वीरनिर्वाण संवत् २४८० | ईस्वी सन १९५४
प्रथमावृत्ति १००० | मूल्य—एक रुपया

मुद्रक
शान्तिलाल जैन
श्री जैनेन्द्र प्रेस बंगला रोड,
जवाहर नगर दिल्ली ६।



जिन्होंने साधु के कठोर व्रतों का पालन करते हुए भी लोकसेवा के बहुत काम किये और अहिंसा के मूल तत्त्वों को मानव जीवन में प्रतिष्ठित करने के लिये सतत प्रयास किया, उन अज्ञान तिमिर तरणि कलिकाल कल्पतरु श्री श्री १००८ स्व० जैनाचार्य श्री विजयवल्लभ सूरीश्वर की पवित्र स्मृति में

प्राक्कथन

कभी-कभी विद्वान् माने जाने वाले व्यक्ति भी कुछ ऐसे विचार व्यक्त कर डालते हैं जो सत्य तथा औचित्य की दृष्टि से सर्वथा अग्राह्य होते हैं। इन असत्य तथा अनुपयुक्त विचारों की उत्पत्ति और अभिव्यक्ति का कारण चाहे कदाग्रह हो अथवा संबद्ध विषय की यथोचित जानकारी का अभाव परन्तु ऐसे विचार विपरीत प्रभाव डालते हैं और उनका निराकरण आवश्यक बन जाता है।

श्री धर्मानन्द कौशाम्बीजी ने अपनी पुस्तक 'भगवान् बुद्ध' में श्रमण शिरोमणि अहिंसा के अनन्य उपासक तथा प्रसारक भगवान महावीर पर रोगनिवृत्ति के लिए मांसभक्षण का आरोप लगाया है। सर्वप्रमुख जैनागमों में गिने जाने वाले श्री भगवती सूत्र के एक सूत्र को उन्होंने आधार बनाया है।

भगवान् ने अपने एक मुनि शिष्य श्री सिंह को कहा कि तुम मेंढिक नगर में सेठ गृहपति की भार्या रेवती के घर जाओ और उससे मज्जार कडए कुक्कुडमंसए (औषध रूप) ले आओ जो उन्होंने अपने लिए बना रखा है। भगवत् वचन में प्रयुक्त इन शब्दों का बिल्ले द्वारा मारे गए मुर्गे का मांस ऐसा असंगत और असंभाव्य अर्थ करके कौशाम्बीजी ने अनर्थ किया है।

हर भाषा में अनेकार्थ शब्द रहते हैं। दो शब्दों से मिलकर बने हुए शब्द का अर्थ भी बहुत बार उन दोनों शब्दों के अर्थों से सर्वथा भिन्न होता है। संस्कृत तथा प्राकृत भाषा में तो विशेषतया अनेकार्थता पाई जाती है। इसलिए विवेकशील विद्वान् किसी भी ग्रंथ में प्रयुक्त शब्दों का अर्थ या उनकी व्याख्या करते हुए इस बात का ध्यान रखेगा कि किस व्यक्ति ने किसको किस समय किस परिस्थिति में किस निमित्त से किस प्रसंग पर और किसके संबंध में वह शब्द कहे।

कानून (विधि Statute Law) में प्रयुक्त शब्दों का अर्थ तथा उनकी व्याख्या करने में प्रसंग, प्रकरण और उद्देश्य आदि का पूरा ध्यान रखना चाहिए यह निर्णय सर्वोच्च न्यायालयों ने बार-बार किया है। जैनागम के इस चर्चित सूत्र की व्याख्या करने में उपयुक्त सिद्धान्तों का तनिक भी ध्यान कौशाम्बीजी ने रखा होता तो वह ऐसा दुष्ट अथवा विकृत अर्थ न करते। देखिए —

भगवान् महावीर—स्वयं अहिंसा के परमोपासक जिनके जीवन का अनवरत साध ही सर्वांगीण अहिंसा व सर्वभूतेषु दया थी

श्री सिंह मुनि—संपूर्ण अहिंसादि पंच महाव्रत के धारक निर्ग्रंथ श्रमण जो किसी भी प्राणी को मन-वचन-काया से कष्ट देना भी पाप समझते हैं। किसी सचित्त वस्तु का प्रयोग भी नहीं करते

रेवती सेठानी—श्रमणोपासिका श्राविका धर्म को सावधानी से पालने वाली। प्रासुक औषधदान से तीर्थंकर गोत्र उपार्जन करने वाली

तेजोलेश्या से उत्पन्न रोग—रक्तपित्त पित्तज्वर दाह तथा रक्तातिसार जिनके लिए मुर्गे का मांस महा अपथ्य और सर्वथा अनुपयुक्त

प्रयुक्त शब्द—वनस्पति विशेष के निर्विवाद सूचक और उनसे तैयार की हुई औषध उक्त रोगों के लिए रामबाण।

इत्यादि अनेक दृष्टिकोणों से विचार करने पर स्पष्ट है कि कौशाम्बी जी ने उत्सूत्र प्ररूपणा की है।

कई विद्वानों ने अपने-अपने ढंग से कौशाम्बीजी की धारणा को निराधार सिद्ध करने का प्रयास किया है। पं० श्री हीरालालजी दूगड़ ने पूरे साधनों के अभाव में भी इस विषय पर गहराई से अध्ययन तथा मनन किया है और सही अर्थ को हर दृष्टि से स्पष्ट करने का सफल प्रयत्न किया है। कई विद्वानों ने इनके इस उद्यम-जन्य विद्वत्तापूर्ण लेख को सराहा है। इसीलिए श्री आत्मानन्द जैन महासभा ने इसे पुस्तक रूप में प्रकाशित करने का निश्चय किया और पंडित हीरालालजी के महान् परिश्रम को सम्मानपूर्वक पुरस्कृत किया। वह पुरस्कार गत वर्ष अक्षय तृतीया को श्री हस्तिनापुर

की पुण्यभूमि में महासभा की ओर से पण्डितजी को भेंट करने का शुभ श्रेय प्राप्त हुआ था और उन्होंने इस श्लाघ्य प्रयास की सराहना उस अवसर पर भी मन से की थी।

उनके ग्रन्थ को पुस्तक रूप में विद्वानों के विचार भाव से अवलोकन के लिए प्रस्तुत करने और इस कथित विषय की बहुमुखी व्याख्या और विश्लेषण के इस अमूल्य प्रयास को उनके समक्ष रखने में महासभा हर्ष अनुभव करती है। हमें आशा है कि इसका अध्ययन करके सभी विचारशील विद्वानों को सन्तुष्टि प्राप्त होगी।

एम १२८ कनाट सरकस
नई दिल्ली १
दिनांक १० ५ ६४

विनीत
शान्तिदास जैन, ऐडवोकेट

आमुख

प्रस्तुत पुस्तक में जैन श्रमण और श्रावक वर्ग के आचार का—विशद तथा अहिंसक आचार का सुन्दर वर्णन किया गया है और उस आचार के साथ मांस मदिरा आदि के सेवन का कोई मेल नहीं है —वे सर्वथा वर्ज्य हैं—ऐसा प्रतिपादन किया गया है। इस अहिंसक आचार के प्रतिष्ठापक भगवान् महावीर की जीवनचर्या का संक्षेप में निरूपण भी कर दिया है वह इसलिए कि—उन्होंने स्वयं अहिंसा की प्रतिष्ठा अपने जीवन में किस प्रकार की थी? यह जानकर स्वयं साधु और गृहस्थ भी अपने अहिंसक आचार में अग्रसर हों और अहिंसा के पालन में दृढ़ता की प्रेरणा भी भगवान् के जीवन से ले सकें। एक पूरा प्रकरण भगवान् महावीर ने आगमों में मांस और मद्यपान का किस प्रकार निषेध किया है और सेवनकर्ता की कैसी दुर्गति होती है—इसके वर्णन में है। इसमें आगमों के अनेक पाठों के हिंदी अनुवाद देकर यह सिद्ध किया है कि स्वयं भगवान् महावीर ने मांस आदि के सेवन का किस प्रकार निषेध किया है।

अब मुख्य प्रश्न सामने है कि—यदि वस्तुस्थिति यह है तो आगमों में कुछ अपवाद के रूप में मांसाहार सम्बन्धी पाठ आते हैं। उनकी भगवान् महावीर के उक्त अहिंसा के उपदेश से किस प्रकार संगति है? आज से एक हजार वर्ष से भी पहले यही प्रश्न टीकाकारों के समक्ष था और आज के आधुनिक युग में भी कई लेखकों ने इस ओर जैन विद्वानों का ध्यान दिलाया है। यह प्रश्न बड़ी परेशानी तब करता है जबकि आज हम यह देखते हैं कि—जैन समाज में मांसाहार सर्वथा त्याज्य है और डर यह लगता है कि—कहीं अनास्थावादी लोग उन पाठों को आगे करके मांसाहार का सिलसिला पुनः जारी न कर दें। यह समस्या जैसे आज है वैसे पूर्वकाल में भी थी।

और अहिंसा के परम उपासक के जीवन में मांसाशन का मेल बैठ ही नहीं सकता है यह हमारी धारणा जैसे आज है वैसे प्राचीनकाल में भी थी। यह भी एक प्रश्न बारबार सामने आता है कि जिस प्रकार भगवान् बुद्ध ने मांस खाया यदि उसी प्रकार भगवान् महावीर ने भी खाया तथा जिस प्रकार आज बुद्ध के अनुयायी मांसाशन करते हैं उस प्रकार कभी कभी जैन श्रमणों ने और गृहस्थों ने भी किया तो अहिंसा के आचार में भगवान् महावीर और उनके अनुयायी की इतरजनों से क्या विशेषता रही ? ये और ऐसे अनेक प्रश्न अहिंसा में सम्पूर्ण निष्ठा रखने वालों के सामने आते हैं। अतएव उनका कालानुसारी समाधान जरूरी है। पूर्वाचार्यों ने तो उन उन पाठों में उन शब्दों का वनस्पतिपरक अर्थ भी होता है ऐसा कहकर छुट्टी ले ली किन्तु इससे पूरा समाधान किसी के मन में होता नहीं और प्रश्न बना ही रहता है। आधुनिक काल में जब त्याग की अपेक्षा भोग की ओर ही सहज झुकाव होता है तब ऐसे पाठ मानव मन को अहिंसा निष्ठा में विचलित कर दें और वह त्याग की अपेक्षा भोग का मार्ग ले यह होना स्वाभाविक है। इस दृष्टि से उन पाठों का पुनर्विचार होना जरूरी है ऐसा समझकर लेखक ने जो यह प्रयत्न किया है वह सराहनीय और विचारणीय है।

लेखक ने विविध प्रमाण देकर भरसक प्रयत्न किया है कि—उन सभी पाठों में मांस का कोई सम्बन्ध ही नहीं है। अनेक कोष और शास्त्रों से यह सिद्ध किया है कि उन शब्दों का वनस्पतिपरक अर्थ किस प्रकार होता है। इस प्रकार अस्थिर चित्तवालों की अहिंसा निष्ठा दृढ़ होगी—इसमें सन्देह नहीं है और आक्षेप करनेवालों के लिए भी नयी सामग्री उपस्थित की गई है जो उनके विचार को बदल भी सकती है। इस दृष्टि से लेखक ने महत् पुण्य की कमाई की है और एतदर्थ हम सभी अहिंसा निष्ठा रखनेवालों के वे धन्यवाद के पात्र हैं।

—मुनि पुण्यविजय

अपनी बात

विश्व के अहिंसा में निष्ठा रखनेवाले जन समाज में साधारण रूप से तथा जैन समाज में विशेष रूप से खलबली मचा देनेवाली 'भगवान् बुद्ध' नामक पुस्तक भारत सरकार की साहित्य अकादमी द्वारा सन् १९५६ ईसवी में हिन्दी भाषा में प्रकाशित हुई। यह पुस्तक बौद्धदर्शन के विद्वान् अध्यापक धर्मानन्द कौशाम्बी लिखित मराठी भाषा में 'बुद्ध चरित्र' का अनुवाद है।

यद्यपि मराठी 'बुद्ध चरित्र' पुस्तक कुछ वर्षों पहले छप चुकी थी परन्तु उसका प्रचार महाराष्ट्र में कतिपय व्यक्तियों तक सीमित होने से जन समाज को इस पुस्तक सम्बन्धी विषय का पता न लगा। जब भारत सरकार ने इसका अनुवाद हिन्दी गुजराती मराठी आसामी कन्नडी मलयालम उड़िया सिंधी तेमिल तेलुगु और उर्दू इन ग्यारह भारतीय प्रमुख भाषाओं में अपनी साहित्य अकादमी द्वारा प्राय एक साथ प्रकाशित करवाकर सर्वव्यापी प्रचार प्रारंभ किया तब जन समाज को ज्ञात हुआ कि इस पुस्तक में करुणा के प्रत्यक्ष अवतार दीर्घ तपस्वी महाश्रमण निग्गंठ नायपुत्त भगवान् वर्द्धमान–महावीर स्वामी तथा निर्ग्रंथ (जैन) श्रमणों पर लेखक महोदय ने मांस भक्षण का आरोप लगाया है जो सर्वथा अनुचित है।

अहिंसा में निष्ठा रखनेवाले मानव समाज ने तथा विशेष रूप से जैन समस्त समाज ने सर्वत्र इस पुस्तक का विरोध किया। इसे जब्त करने के लिये स्थान-स्थान पर सभाएं हुई प्रस्ताव पास किये गये तथा भारत सरकार को इस विषय में तार व अर्जियाँ भेजी गयीं। अनेक शिष्ट मंडल भी योग्य अधिकारियों से मिले। अनेक स्थानों में सनातन धर्मियों

की सभाओं ने भी इस पुस्तक के विरोध में प्रस्ताव पास कर योग्य अधिकारियों को भेजे।

इस आन्दोलन का परिणाम मात्र इतना ही हुआ कि उक्त पुस्तक लेखकों ने छपवाने का तथा उसके प्रकाशित संस्करणों में मांस सम्बन्धी प्रकरण के साथ जैन विद्वानों के मान्य अर्थ को सूचित करनेवाला नोट लगवा देने का अकादमी ने स्वीकार किया परन्तु खेद का विषय यह है कि इस पुस्तक का ग्यारह भाषाओं में सर्वव्यापक प्रचार बराबर आज भी चालू है।

भारत एक धर्म प्रधान देश है मात्र इतना ही नहीं अपितु सत्य और अहिंसा की जन्म भूमि है। इसी धर्म वसुंधरा पर भारत की सर्वोच्च विभूति महान अहिंसक करुणा के प्रत्यक्ष अवतार दीर्घ तपस्वी महाश्रमण निग्रंथ तीर्थंकर (निगंठ नायपुत्त) भगवान् महावीर स्वामी (जैनों के चौबीसवें तीर्थंकर) का जन्म हुआ। इसी पवित्र भारत भूमि में उन्होंने जगत् को सत्य अहिंसा अपरिग्रह तथा स्याद्वाद आदि सत्सिद्धान्तों का प्रदान किया। समस्त विश्व इस बात का स्वीकार करता है कि श्रमण भगवान् वर्द्धमान महावीर तथा उनके अनुयायी निग्रंथ जैन श्रमण मनसा वाचा-कर्मणा अहिंसा के प्रतिपालक थे और उनके अनुयायी श्रमण एवं श्रमणोपासक आज तक इसके प्रतिपालक हैं।

ऐसा होते हुए भी ईस्वी सन् १८८४ में यानि आज से ८० वर्ष पहले जर्मन विद्वान् डाक्टर हर्मन जेकोबी ने जैनागम 'आचारांग सूत्र' के अपने अनुवाद में सूत्रगत मांस आदि शब्दोंवाले उल्लेखों का मांस अर्थ किया था उस पर विद्वानों ने पर्याप्त ऊहापोह किया था। अनेक विद्वानों ने डाक्टर जैकोबी के मन्तव्यों के खण्डन रूप पुस्तिकाएं भी लिखी थीं जिसके परिणामस्वरूप डाक्टर जेकोबी को अपना मत परिवर्तन करना पड़ा। उन्होंने अपने १४-२-१९२८ ईस्वी के पत्र में अपनी भूल स्वीकार की। उस पत्र का उल्लेख हिस्ट्री ऑव कैनानिकल लिटरेचर ऑव जैनाज़' पृष्ठ ११७-११८ में हीरालाल रसिकलाल कापडिया ने इस प्रकार किया है —]

There he has said that बहु अट्ठियं मंसं वा मच्छं वा बहुकण्टगं has been used in the metaphorical sence as can be seen from the illustration of नलतीयवत् given by Patanjali in discussing a vartika of Panini (III 3 9) and from Vachaspati s com on Nyayasutra (IV 1 54) he has concluded This meaning of the passage in there fore that a monk should not accept in alms any substance of which only of which only a part can be eaten and a greater part must be rejected

डॉक्टर हर्मन जकोबी के इस स्पष्टीकरण के बाद ओस्लो के विद्वान डाक्टर स्टेन कोनो ने अपने मत को एक पत्र द्वारा इस प्रकार प्रदर्शित किया है जिसका हिन्दी अर्थ नीचे दिया जाता है —

जैनों के मांस खाने की बहुविवादास्पद बात का स्पष्टीकरण करके प्रोफेसर जकोबी ने विद्वानों का बड़ा हित किया है। प्रकट रूप से यह बात मुझे कभी स्वीकार्य नहीं लगी कि जिस धर्म में अहिंसा और शाकाहार का इतना महत्त्व रहा हो उसमें मांस खाना किसी काल में भी धर्मसंगत माना जाता रहा होगा। प्रोफेसर जकोबी की छोटी-सी टिप्पणी से सभी बातें स्पष्ट हो जाती है। उसकी चर्चा करने का प्रयोजन यह है कि मैं उनके स्पष्टीकरण की ओर जितना संभव हो उतने अधिक विद्वानों का ध्यान आकृष्ट करना चाहता हूँ। पर निश्चय ही अभी भी ऐसे लोग होंगे जो (जकोबी के) पुराने सिद्धान्त पर दृढ़ रहेंगे। मिथ्यादृष्टि से मुक्त होना बड़ा कठिन है पर अन्त में सदा सत्य की विजय होती है।

(आचार्य विजयेन्द्रसूरि कृत तीर्थंकर महावीर भाग २ पृ० १८१)

जकोबी के बाद इस प्रश्न को श्री गोपालदास जीवाभाई पटेल ने तथा अध्यापक धर्मानन्द कौशाम्बी ने श्रमण भगवान् महावीर को तथा निर्ग्रन्थ (जैन) श्रमणों को मांसाहारी सिद्ध करने का दुःसाहस किया है। श्री गोपालदास जीवाभाई पटेल आज जीवित हैं पर अध्यापक धर्मानन्द कौशाम्बी इस संसार से विदा हो चुके हैं। इन दोनों ने जैनागमों के गूढ़ार्थ युक्त उन उल्लेखों

को ससार के समक्ष अयथार्थ रूप से प्रकट कर जो चर्चा उपस्थित की है उसका आज तक अन्त नहीं आया।

यद्यपि अध्यापक कौशाम्बी पाली भाषा तथा बौद्ध साहित्य के प्रखर विद्वान माने जाते थे परन्तु अर्द्ध मागधी भाषा के तथा जैन आचार विचार के पूर्णज्ञाता न होने के कारण एवं गोपालदास भाई पटेल भी इन विषयों में अनभिज्ञ होने के कारण (दोनों ने) जैनागमों के कथित सूत्रपाठों का गलत अर्थ लगाकर निर्ग्रंथ ज्ञातपुत्र श्रमण भगवान् महावीर तथा उनके अनुयायी निर्ग्रंथ श्रमण संघ पर प्राण्यंग मत्स्य मांसाहार का निर्मूल आरोप लगाया है। वास्तव में बात यह है कि जो भी कोई अहिंसा धर्म के अजोड़ संस्थापक प्रचारक विश्ववत्सल जगद्‌बन्धु दीर्घ तपस्वी महाश्रमण भगवान महावीर पर मांसाहार का दोषारोपण करता है वह भगवान महावीर को यथायोग्य नहीं समझ सका उनके वास्तविक पवित्र जीवन को नहीं समझ पाया। यही कारण है कि ऐसे व्यक्ति ऐसा अप्रशस्त दुस्साहस कर जात-अजात भाव से मांसाहार प्रचार का निमित्त बन जाते हैं। ऐसे निर्मूल आक्षेप का प्रतिवाद करना सत्य तथा अहिंसा के प्रेमियों के लिये अनिवार्य हो जाता है। इसी बात को लक्ष्य में रखते हुए कई विद्वानों ने इस प्रतिवाद रूप कुछ लेख तथा पुस्तिकायें लिखकर प्रकाशित कीं।

फिर भी जिज्ञासुओं के लिये इस विषय में विशेष रूप से खोजपूर्ण लेख की आवश्यकता प्रतीत हो रही थी। अत भारत के अनेक स्थानों से मित्रों तथा विद्यार्थी बन्धुओं ने अपने पत्रों द्वारा तथा साक्षात् रूप में मिलकर मुझे इस "भगवान् बुद्ध" के मांसाहार प्रकरण के प्रतिवाद रूप न्याय-खोजपूर्ण युक्ति पुरस्सर जैनशास्त्र सम्मत तथा जैन आचार विचार के अनुकूल निबंध लिखने की आग्रहभरी पुनःपुनः प्रेरणायें कीं। इन निरन्तर की प्रेरणाओं ने मेरे मन में सुषुप्त इच्छाओं को बल प्रदान किया।

विशेष रूप से श्री रमणचन्द्रजी दूगड़ जैन (पश्चिम पाकिस्तान से आये हुए) कानपुर निवासी ने इस विषय पर कुछ नोट लिख भेजे और भावना प्रकट की कि इस विषय पर एक सुन्दर निबंध तयार किया जावे

इससे मुझे विशेष रूप से सक्रिय प्रेरणा तथा उत्साह मिला और इस संकल्प वचन में सहायता मिला। मैंने उनमें से कुछ उपयोगी नोट्स इस निबंध में स्वीकार किये हैं। अतः मैं उन सब प्रेरणादाताओं का आभारी हूँ।

मैंने इस निबंध को ईसवी सन् १९५७ में अम्बाला शहर पंजाब में लिखना प्रारंभ किया और पूरे दो वर्ष के सतत परिश्रम के बाद ईसवी सन १९५९ को लिखकर तैयार हो गया। मैंने ईसवी १९६० को लिखा आ गया।

इस निबंध को तैयार करने में कई अड़चनें असुविधाओं और असुविधाओं तथा साधन-सामग्री के अभाव के बीच में से गुजरना पड़ा। यन-केन प्रकारेण साधन सामग्री जुटाकर और सब अड़चनों का सामना करके यह निबंध ईसवी सन १९५९ में तैयार होकर पूरे पांच वर्ष बाद आज सन् ईस्वी १९६४ में श्री आत्मानन्द जैन महासभा पंजाब द्वारा प्रकाशित होकर आपके कर कमलों तक पहुंच पाया है। आशा तो थी यह जल्दी प्रकाशित होता लेकिन "श्रेयांसि बहु विघ्नानि" कहावत यहां भी प्रकट बनी।

अब मेरी यह हार्दिक भावना है कि इस निबंध का अनेक भाषाओं में अनुवाद होकर विश्वभर में सर्वत्र प्रचार हो जिससे जैन धर्म जैन तीर्थंकरों जैन आगमों जैन मुनियों तथा जैन गृहस्थों पर लगाये गये नितान्त मिथ्या आक्षेपों का निरसन होकर इसका सत्य और वास्तविक स्वरूप से विश्व का मानव-समाज परिचित हो।

धर्मप्रेमी महानुभावों को इसके सर्वत्र प्रचार के लिए इस निबंध की प्रकाशक संस्था को प्रोत्साहन देते रहना चाहिये।

इस निबंध में यह सप्रमाण सिद्ध किया गया है कि निर्ग्रंथ ज्ञातपुत्र श्रमण भगवान महावीर ने उत्सर्ग तथा अपवाद किसी भी सूरत में प्राण्यंग मांसाहार ग्रहण नहीं किया और न हो आप अपने सिद्धान्त (आचार विचार) के अनुसार ऐसा अभक्ष्य पदार्थ ग्रहण कर सकते थे। उत्सर्ग मार्ग वह सिद्धान्त है जो प्रधान मार्ग है। महापुरुष के जीवन में हमेशा प्रधान मार्ग का ही आचरण रहता है। उनके लिये देहाध्यास कोई खास वस्तु नहीं है।

अत वे अपने जीवन में किसी भी हालत में अपने लिये अपवाद मार्ग का आश्रय नहीं लेते। इसका आशय यह है कि वे अपने जीवन में हिंसा आदि जिसमें हो ऐसा कोई कार्य नहीं करते। अतः प्राण्यंग मांसादि का ग्रहण करना उनके लिये असंभव ही है इसलिये जैनों के पाँचवें आगम भगवती सूत्र के विवादास्पद सूत्रपाठ के शब्दों का प्राण्यंग मांसपरक अर्थ करना नितान्त अनुचित और गलत है तथा श्रमण भगवान महावीर को जो रोग था जिसके लिये उन्होंने जिस औषध का सेवन किया था यदि वह प्राण्यंग मांस होता तो वह प्राणघातक सिद्ध होता। इसलिये उन्होंने वनस्पतियों से तैयार की औषधि से ही उसका आरोग्य लाभ किया। वह औषध —

स्वयं से संस्कारित बिजोरा (जम्बीर) फल का मुरब्बा औषध रूप में ग्रहण किया था। क्योंकि इस औषध में रक्त पित्त आदि रोगों का शमन करने के पूर्ण गुण विद्यमान हैं।

सावर जैसा द्वारा मान्य इस सूत्रपाठ का अर्थ वनस्पतिपरक औषध रूप में मुनि दिगम्बर जैन विद्वानों ने भी स्वीकार किया है और इस औषध-रूप की भूरि भूरि प्रशंसा की है। मात्र इतना ही नहीं अपितु यह भी स्वीकार किया है कि भगवान् को इस औषध दान देने के प्रभाव से रेवती श्राविका ने तीर्थंकर नामकर्म का उपार्जन किया इसलिए औषध दान भी देना चाहिये। इससे स्पष्ट है कि मुनि दिगम्बर जैन विद्वानों को भी इस औषध के वनस्पतिपरक अर्थ में कोई मतभेद नहीं है। देखें इसी निबंध का पृष्ठ ७८।

अधिक क्या कहें गलत तथा भ्रान्तिपूर्ण ऐसा अनुचित प्रचार कर अति प्राचीनकाल से चले आये जैन धर्म के पवित्र और सत्य सिद्धान्तों को तोड़ मरोड़कर रखने से ऐसे पवित्र सत्सिद्धान्तों से अज्ञान तथा द्वेषियों को मिथ्या प्रचार करने का मौका मिलता है। अतः कोई विद्वान् यदि किसी गलतफहमी का शिकार हो भी गया है तो उसे इस बात को सत्य रूप में जानकर अपनी भूल के लिये प्रतिवाद तथा पश्चात्ताप करना ही उसकी सच्ची विद्वत्ता की कसौटी है।

तथा अध्यापक धर्मानन्द कौशाम्बी तथा श्री गोपालदास भाई पटेल ने इस भगवती सूत्र के पाठ के अन्तर्गत आनेवाले शब्दावलि तथा आचाराङ्ग के जिन सूत्रों का भी ऐसा ही आमिष अर्थ किया है उनके स्पष्टीकरण के लिए भी इस पुस्तिका में अनेक विद्वान डाक्टर हर्मन जैकोबी आदि ने इस अर्थ को जो गलत ठहराया है उसके आधार पर अब अपना स्वयं मत प्रदर्शित करके स्पष्टीकरण किया है। यह पाठ उद्धृत कर दिया है तथा इसके साथ ही इस निबंध के पृष्ठ १५८ से १६० की टिप्पणी में इन सूत्रों में लिए गए विवादास्पद शब्दों के वनस्पतिपरक अर्थ [illegible] हैं जिससे पाठकों को यह भी ज्ञात हो जाए कि इनका अर्थ वनस्पतिपरक करना ही उचित है।

अब कि हमारे इस निबंध का मुख्य विषय भगवती सूत्र के विवादास्पद सूत्रपाठ के अर्थ का स्पष्टीकरण है इसलिये दूसरे आगमों के विवादास्पद सूत्रपाठों के शब्दों का वनस्पतिपरक अर्थमात्र देना ही उचित समझा है कि सर्वसाधारण के लिए इतना मात्र ही काफी है। आशा है कि इस पर से महानुभावों को यह विषय सरलतापूर्वक अच्छी तरह समझ में आ सकेगा [illegible]।

इस निबन्ध के बारे में ज्यादा कुछ भी [illegible] लिखकर हम आपका और अपना समय नष्ट करना उचित नहीं समझते। पाठक महानुभावों से मात्र इतना ही अनुरोध है कि आप इस निबन्ध को [illegible] प्रमाणों के साथ पढ़ें और विचार करें कि इस बारे में हम कहाँ तक सफलता प्राप्त हुई है। तब इसमें यदि कोई त्रुटि दृष्टिगोचर हो तो हमें सूचित करने की कृपा करें ताकि अगले संस्करण में उसे परिमार्जित कर दिया जाए।

जैन तथा जैन धर्म के लिए अध्यापक धर्मानन्द कौशाम्बी कृत भगवान बुद्ध नामक पुस्तक एक लांछन रूप है। जब तक निर्ग्रंथ जैन श्रमणों तथा महाश्रमण निर्ग्रंथ ज्ञातपुत्र भगवान् श्री महावीर स्वामी पर लगाये गये प्रामिष मांसाहार के लांछनरूप कुत्सित इस पुस्तक में से निकाल न दिये जाएँ तब तक जैन समाज तथा अहिंसा में निष्ठा रखनेवाले अन-

समाज में सन्तोष नहीं हो सकता। तथा भाई गोपालदास जावाभाई अथवा जो कोई अन्य महानुभाव भी इनका अनुकरण कर रहे हों उनको भी वास्तविक अर्थ समझकर अपनी भूल का स्वीकार कर अपनी सरलता और सत्यप्रियता का परिचय देते हुए वास्तविक विद्वत्ता का परिचय देना चाहिए।

भारत सरकार से भी हमारी प्रार्थना है कि जिस प्रकार Religious Leaders (धार्मिक नेता) नामक पुस्तक प्रकाशित होने पर अल्प संख्यकों की भावनाओं का आदर करते हुए उसे जब्त कर तथा 'सरिता' मासिक पत्रिका के जुलाई के अंक को जब्त करके सत्य परायणता का परिचय दिया है वैसे ही अध्यापक धर्मानन्द कोशाम्बी कृत 'भगवान् बुद्ध' नामक पुस्तक के लिए भी कदम उठाये जिससे अहिंसा प्रेमी जगत् के सामने शुद्ध न्याय का परिचय मिले।

इस निबन्ध को लिखने में जिन ग्रन्थों की सहायता ली गयी है उनकी सूची आगे दी है। उन सब ग्रन्थकर्त्ताओं का साभार धन्यवाद।

इस निबन्ध सम्बन्धी सब प्रकार की सम्मतियां एवं सूचनायें नीचे लिखे पते से भेजकर अनुग्रहीत करें।

२/८२ रूपनगर
दिल्ली ६

हीरालाल दूगड़
व्यवस्थापक, जैन प्राच्यग्रंथ भंडार

कृतज्ञता प्रकाश

अपने परमोपकारी गुरुदेव जैनाचार्य स्व० श्रीमद् विजयवल्लभ सूरीश्वरजी के देवलोक गमन के उपरान्त श्री आत्मानन्द जैन महासभा पंजाब अथवा समस्त पंजाब जैन श्री संघ ने एक स्वर से संकल्प किया था कि गुरुदेव के मिशन की पूर्ति के लिए श्री वल्लभ स्मारक की स्थापना की जाए। स्मारक में अनेक प्रवृत्तियों का आयोजन है—गुरुवर श्रीमद् विजयानन्द सूरीश्वर व श्रीमद् विजयवल्लभ सूरीश्वर की कलामय प्रतिमाएं, हस्तलिखित शास्त्रों का संग्रह व रक्षण पुस्तकालय ग्रन्थ प्रकाशन शोध कार्य कलाकक्ष अतिथिगृह आदि।

स्मारक की स्थापना देहली में होगी। इस समय भण्डारों के ग्रंथों का सूचीकरण हो रहा है। पं० हीरालालजी दूगड़ यह उपयोगी काम कर रहे हैं। साहित्य प्रकाशन की ओर भी पग उठाया गया है। आदर्श जीवन का प्रकाशन हो चुका है। सस्ता साहित्य मंडल के सहयोग से 'मानव और धर्म' (लेखक डा० इन्द्रचन्द्र शास्त्री एम ए पी एच डी) भी प्रकाशित हो चुका है।

प्रस्तुत पुस्तक एक महत्वपूर्ण विवादास्पद विषय पर लिखी गई है। विद्वान लेखक व्याख्यान दिवाकर विद्याभूषण पं० हीरालाल दूगड़ न्यायतीर्थ न्यायमनीषी स्नातक ने कठोर परिश्रम से इसे तैय्यार किया है। हमें आशा है कि विद्वान इसका समुचित अध्ययन कर प्रचलित भ्रान्ति दूर कर हमें अपनी सम्मति भेजेंगे। हम लेखक सन्मान्य आमुख लेखक मुनिराज श्री पुण्यविजयजी तथा श्री ज्ञानदासजी एडवोकेट का हार्दिक आभार मानते हैं जिनके प्रयत्नों व प्रेरणाओं से यह पुस्तक साहित्य जगत् के समक्ष उपस्थित हो रही है। आर्थिक सहायकों के भी हम कृतज्ञ हैं।

जेठ सुदि अष्टमी
वि० २०२१

श्री आत्मानन्द जैन
महासभा, पंजाब

विषयानुक्रमणिका

प्रथम खण्ड

जैन आचार विचार तथा निर्ग्रन्थ ज्ञातपुत्र श्रमण भगवान् महावीर

स्तम्भ नं० विषय	पृष्ठ
१—जैन अहिंसा का प्रभाव	३
२—जैन गृहस्थों का आचार	१३
३—निर्ग्रन्थ श्रमण का आचार	२२
४—भगवान महावीर स्वामी का त्यागमय जीवन	२७
५—श्रमण भगवान महावीर का तत्त्व ज्ञान	३२
६—श्रमण भगवान् महावीर तथा अहिंसा	३५
७—भगवान् महावीर के मांसाहार सम्बन्धी विचार	४०
८—जैन मांसाहार से सर्वथा अलिप्त	४८
९—तथागत गौतम बुद्ध द्वारा निर्ग्रन्थचर्या में मांसभक्षण निषेध	५७
१०—बौद्ध-जैन संवाद में मांसाहार निषेध	६२

द्वितीय खण्ड

निग्गंठ नायपुत्त श्रमण भगवान् महावीर पर मांसाहार के आक्षेप का निराकरण

स्तम्भ नं० विषय	पृष्ठ
११—महा श्रमण भगवान् महावीर स्वामी पर मांसाहार के आरोप का निराकरण	६९

स्तम्भ नं०	भाग	विषय	पृष्ठ
११		१—विवादास्पद सूत्र-पाठ और उसके अर्थ के लिये जैन विद्वानों के मत	७१
	,	२—इस औषधदान पर दिगम्बर जैनों का मत	७८
		—जैन तीर्थंकर का आचार	७९
	४	५—निर्ग्रंथ श्रमण तथा निर्ग्रंथ श्रमणोपासक का आचार	८५
	,	६—इस औषध का सेवन करनेवाले, औषध लानेवाले, औषध बनाने तथा देनेवाले का जीवन-परिचय	८६
		७—मांसाहारी प्रदेशों में रहनेवाले जैन धर्मावलम्बियों का जीवन-संस्कार तथा उसके प्रभाववाले प्रदेशों में अन्य धर्मावलम्बियों पर उनका प्रभाव	९७
		८—अन्य तीर्थिकों द्वारा जैन-धर्म सम्बन्धी आलोचना में मांसाहार के आक्षेप का अभाव	९०
		९—तथागत गौतम बुद्ध की निर्ग्रंथावस्था का तपश्चर्या में मांसाहार को ग्रहण न करने का वर्णन	१०२
		१०—श्रमण भगवान् महावीर का रोग तथा उसके लिये उपयुक्त औषध	१०४
		११—विवादास्पद प्रकरणवाले पाठ में आने वाले शब्दों के वास्तविक अर्थ	१०७
	,	विभाग १—मांस शब्द की उत्पत्ति का इतिहास	१०७
		२—मांस के नामों में वृद्धि	१०८

स्तम्भ नं०	भाग	विभाग	विषय	पृष्ठ
११			३—वनस्पतिपरक मांसादि	१०९
			४—मांसादि शब्दों के अंग्रेजी कोशकारों के अर्थ	११२
			५—वर्तमान में माने जानेवाले प्राणी-वाच्य शब्दों के तथा मांस मत्स्यादि शब्दों के अनेक अर्थ	११२
			६—शब्द जो प्राणधारी और वनस्पति दोनों के वाचक हैं	११५
			७—वर्तमानकाल में कुछ प्रचलित शब्द	११६
			८—श्रमण भगवान् महावीर और भक्ष्याभक्ष्य विचार	११७
			९—विवादास्पद सूत्रपाठ (विचारणीय मूलपाठ)	१२२
			१०—कवोय क्या था	१२३
			११—मज्जार कडए कुक्कुड मंसए क्या था	१२७
			१२—विवादास्पद सूत्रपाठ का वास्तविक अर्थ	१४५
	तृतीय खंड			
			उपसंहार	१४९

साधन ग्रन्थों की नामावली

१ अथर्ववेद संहिता
२ अर्थशास्त्र (कौटिल्य)
३ अनेकार्थ तिलक (महीपकृत)
४ अनेकार्थ संग्रह
५ अमर कोश
६ अष्टांगसार संग्रह
७ आयभिषक वचन (शंकर दाजीपदे कृत)
८ उपनिषद् वाक्य कोश
९ ऋग्वेद संहिता
१० क्षेम कुतूहल
११ गृह्यसूत्र
१२ चरक संहिता

जैन साहित्य

१३ अभिधान चिन्तामणि कोश (हेमचन्द्र)
१४ आगम-आचारांग
१५ आगम-सूत्रकृतांग
१६ आगम स्थानांग
१७ आगम स्थानांग सूत्र टीका
१८ आगम भगवती सूत्र
१९ आगम भगवती सूत्र टीका
२० ... वपाग सूत्र
२१ ... सूत्र

२२ आगम अन्तकृतदशांग सूत्र
२४ आगम प्रश्न व्याकरण सूत्र
२४ आगम विपाक सूत्र
२५ आगम प्रज्ञापना सूत्र
६ आगम कल्प सूत्र
२ आगम दशवैकालिक सूत्र
२८ आगम उत्तराध्ययन सूत्र
२९ आगम अनुयोगद्वार सूत्र
३० जैन चरित माला (दिगम्बर)
३१ जैन सत्य प्रकाश (मासिक)
३२ तत्वार्थ सूत्र
३३ निरञ्जन प्रस्तावना (दिगम्बर)
३४ त्रिषष्ठि शलाका पुरुष चरित्र (हेमचंद्र)
३५ धर्म बिन्दु (हरिभद्र)
३६ धर्म रत्न करण्ड (वर्द्धमान सूरि)
३७ निघण्टु शास्त्र (हेमचन्द्र)
३८ महावीर चरित्र प्राकृत (नेमिचन्द्र सूरि)
३९ महावीर चरित्र प्राकृत (गुणचन्द्र सूरि)
४० योगशास्त्र (हेमचन्द्र)
४१ श्राद्ध गुण विवरण
४२ श० प्राकृ० (हेमचन्द्र)
४३ सम्बोध प्रकरण
४४ सम्बोध सप्ततिका
४५ जैन पत्र-पत्रिकाएं

निघण्टु कोश

४६ नानार्थ रत्नमाला
४७ निघण्टु (कयदेव)

४८ निघण्ट भावप्रकाश
४९ निघण्टु मदनपाल
५० निघण्टु रत्नाकर
५१ निघण्टु राज
५ निघण्टु राजवल्लभ
५२ निघण्ट वद्यक उर्दू भाषा में (कृष्ण न्यास)
५४ निघण्ट शालिग्राम
५ निघण्ट नाप
५६ निरुक्त भाष्य (आचार्य यास्क)
५७ पाक न्पण

बौद्ध साहित्य

५८ अगनर निकाय
५९ अव्व कथा
६० पान्वनाथ का चातुयाम धर्म (धर्मानन्द कौशाम्बी)
६१ ज्ञा
६२ बौद्धन्शन (राहुल सांकृत्यायन)
६३ भगवान बुद्ध (धमानन्द कौशाम्बी)
६४ मज्झिम निकाय
६५ नन्दिन विस्तर

अन्य ग्रंथ

६६ धर्मसिंधु
६७ वन्मस्तुलाभिधान (वाचस्पति)
६८ बन्दारण्यकोपनिषद्
६९ वज्रयन्ता
७० वद्यक शब्द सिंधु
७१ ›

७२ हिन्दी विश्वकोश
७३ ऐतरेय ब्राह्मण
७४ पत्र-पत्रिकाएं

ENGLISH BOOKS

75 Sanskrit English Dictionary (Apte)
76 English Dictionary (J Ogilvie)
77 Sanskrit English Dictionary (Monier Monier-Williams)
78 A. S B 1868 N/85
79 Mr Gate report
80 Hinduism (Prof D C Sharma)

उद्धरण

१ डा० राधा विनोद पाल
२ मि सरासी
३ महात्मा मोहनदास कमचन्द गांधी
४ मि एव कूप जेंड
५ मि बगलर
६ कर्नल डल्टन
७ लोकमान्य बालगंगाधर तिलक
८ अल्लाडी कृष्णा स्वामी अय्यर
९ डा हमन जकोबी
१० डा स्टन कोनो

प्रथम खण्ड

जैन आचार-विचार तथा निर्ग्रन्थ ज्ञातपुत्र श्रमण भगवान् महावीर

[१]

जैन अहिंसा का प्रभाव

जैन अहिंसा के बारे में कौन नहीं जानता ? जैन धर्म के प्रत्येक आचार विचार की कसौटी अहिंसा ही है। जैन धर्म की इसी विशेषता के कारण विश्व का अन्य कोई भी धर्म इस की समानता नहीं कर सकता। आज भी जैनों के अहिंसा, संयम, तप का पालन तथा मदिरा-मांसादि का त्याग सारे संसार में प्रसिद्ध हैं। इसी लिये यह धर्म 'दया धर्म' के नाम से आज भी जगदविख्यात है। इसकी अलौकिक अहिंसा को देखकर आज के विलक्षण विद्वान मंत्र मुग्ध हो जाते हैं। डा० राधा विनोद पाल Ex judge International Tribunal for trying the Japanese War Criminals ने अपने अभिप्राय में कहा है कि—

If any body has any right to receive and welcome the delegates to any Pacifists Conference it is the Jain Community The principle of Ahimsa which alone can secure World Peace has indeed been the special contribution to the cause of human development by the Jain Tirthankaras and who else would have the right to talk of World Peace than the followers of the great Sages Lord Parshvanath and Lord Mahavira ?

—(Dr Radha Vinod Paul)

अर्थात—विश्वशान्ति संस्थापक सभा के प्रतिनिधियों का हार्दिक स्वागत करने का अधिकार केवल जैनों का ही है क्योंकि अहिंसा ही विश्वशान्ति का साम्राज्य पैदा कर सकती है और ऐसी अनोखी अहिंसा की भेंट जगत् को जैन धर्म के प्रस्थापक तीर्थंकरों ने ही की है। इसी लिये

विश्वशांति का आधार प्रभु श्री पार्श्वनाथ और प्रभु श्री महावीर के अनुयायियों के अतिरिक्त दूसरा कौन बन सकता है ?

राष्ट्रपिता महात्मा गांधी भी लिखते हैं कि "महावीर स्वामी का नाम किसी भी सिद्धान्त के लिए यदि पूजा जाता है तो वह अहिंसा ही है। प्रत्येक धर्म की महत्ता इसी बात में है कि उस धर्म में अहिंसा का तत्त्व कितने प्रमाण में है। और इस तत्त्व का यदि किसी ने अधिक-से-अधिक विकसित किया है तो वह भगवान महावीर ही थे।'

भगवान महावीर हों अथवा कोई भी जैन तीर्थंकर हो न तो वे स्वयं ही मदिरा-मांसादि का प्रयोग करते हैं और न ही उनके अनुयायी यहां तक कि जैन धर्म पर विश्वास रखने वाले गृहस्थ भी, जो किसी तरह का व्रत नियम या प्रतिज्ञा का ग्रहण नहीं करते अर्थात् श्रावक के व्रतों को भी ग्रहण नहीं करते मांस मदिरादि अभक्ष्य पदार्थों से हमेशा दूर रहते आ रहे हैं। भगवान महावीर आदि जैन तीर्थंकरों के मांसाहार निषेध का सविनय परिचायक सबूत (प्रमाण) इससे अधिक क्या हो सकता है। [१]

निग्रंथ श्रमण जैन साधु तो छः काया के जीवों की हिंसा से बचते हैं। वे त्रसकाय के जीवों का आरंभ (हिंसा) नहीं करते सचित्त फल फूल, सब्जी आदि का भक्षण नहीं करते। अग्निकाय का आरम्भ नहीं करते। सचित्त जल का उपयोग नहीं करते। बैठना या खड़े होना हो तो रजोहरण (ऊनादि नरम वस्तु का एक गुच्छा जिससे स्थान साफ करने पर जीवादि की हिंसा का बचाव होता है) से स्थानादि का प्रमार्जन (साफ-सूफ) करके बैठते उठते चलते आते हैं ताकि किसी सूक्ष्म जीव की भी हिंसा न हो जावे। पृथ्वी को न स्वयं खोदते हैं न दूसरा से खुदवाते हैं। वायुकाय (वायु के जीवों) की हिंसा से बचने के लिए न पंखा चलाते हैं न

१ भगवान महावीर तथा उनके अनुयायी निग्रंथ श्रमण एवं श्रमणोपासकों के आचार सम्बन्धी विशेष स्पष्टीकरण अगले स्तम्भों में करेंगे।

दूसरा से चलवाते हैं। रात्रि भोजन भी नहीं करते क्योंकि इससे प्राय त्रस जीवो का हिंसा होती है तथा भोजन के साथ त्रस जीवो के पेट म चले जान से मासभक्षण का दोष भी सभव है। इससे स्पष्ट हो जाता है कि समस्त जन तीथकरो—भगवान महावीर आदि—ने अपने अनुयायी जन मुनियो के लिये स्थूल से लेकर सूक्ष्म हिंसा से बचन के लिये तथा अहिंसापालन के प्रति कितना जागरूक रहन का आदेश दिया है। जिसके फलस्वरूप आज तक जन साधु-साध्वी सघ स्थूल से लेकर सूक्ष्म-से-सूक्ष्म अहिंसा का पालन करन में सदा जागरूक चला आ रहा है। यह बात आज भी ससार प्रत्यक्ष देख रहा है।

प्राणी मात्र के रक्षक सर्वज्ञ भगवान महावीर जीव का स्वरूप जानते थे। उन्होने बतलाया कि मानव जब तक इतनी सूक्ष्म अहिंसा का पालन नहीं करता तब तक वह निर्वाण (मोक्ष) प्राप्ति में समथ नहीं हो सकता। शाश्वत सुख प्राप्त करने का अहिंसा के पूर्ण पालन को छोडकर अन्य साधन हो ही नहीं सकता। इसी वजह से वीतराग-सर्वज्ञ भगवान महावीर द्वारा उपदिष्ट आगमो का प्रधान विषय अहिंसा ही है। जो धर्मनिर्यामक तीर्थंकर यहाँ तक सूक्ष्म रूप से जीवो की हिंसा से स्वय बचते हैं और दूसरो के लिये बचने का विधान करते हैं उनपर मास भक्षण का आरोप लगाना कहाँ तक उचित है ? इसके लिये सुज्ञ पाठक स्वय विचार कर सकते हैं।

अहिंसा के विषय म करुणासागर वीतराग सर्वज्ञ भगवान् महावीर ने यह स्वय फरमाया है —

"सव्वे पाणा पियाउया, सुहसाया दुहपडिकूला,
अप्पियवहा पियजीविणो जीविउकामा णातिवाएज्ज कचण"

(आचारांग श्रु० १ अ० २ उ० ३)

अर्थात्—सब प्राणियो को आयुष्य प्रिय है, सब सुख के अभिलाषी हैं, दुःख सब को प्रतिकूल है, वध सबको अप्रिय है जीवन सभी को प्रिय है सभी ... ना ... हैं इस लिये किसी को मारना या कष्ट देना

अहिंसा धर्म की इतनी महिमा संसार के अन्य किसी धर्म में नहीं पायी जाती। कितना सुन्दर विचार है—

"स्थूल से लेकर सूक्ष्म सब जीवों को अपने समान समझो और किसी को कष्ट मत पहुँचाओ अपने में सबको देखो।"

इससे यह स्पष्ट है कि महाश्रमण भगवान महावीर की भावना प्राणी-मात्र की रक्षा के लिये कितनी उत्कट थी। यह शाश्वत सिद्धान्त जैनों में अब तक अटूट बना रहा है। जैन-मुनि—मनुष्य पशु पक्षी कीट, पतंग आदि त्रस जीवों तथा पृथ्वी जल अग्नि वायु और वनस्पति स्थावर जीवों की हिंसा मन-वचन-काया से न तो स्वयं करते हैं न दूसरों से करवाते हैं और न करनेवाले का अनुमोदन (प्रशंसा) ही करते हैं। जब कोई गृहस्थ जैन मुनि की दीक्षा ग्रहण करता है तब उसे सब प्रथम प्राणातिपात-विरमण नामक महाव्रत का अंगीकार करना पड़ता है जिसका पालन वह अपने जीवन पर्यन्त पूरी दृढ़ता के साथ करता है। सारांश यह है कि निग्रंथ श्रमण छोटे-से-छोटे जन्तु से लेकर मनुष्य पर्यन्त किसी भी प्राणी की हिंसा न तो स्वयं करता है और न दूसरों को ऐसा करने का उपदेश देता है तथा न ही ऐसा करने वाले को अच्छा समझता है। साधु की अहिंसा का स्वरूप आगे चलकर हम साधु के आचार में लिखेंगे।

करुणावत्सल महाश्रमण सर्वज्ञ-सर्वदर्शी भगवान महावीर स्वामी ने इस उपर्युक्त प्रकार की अहिंसा का विश्व के जनसमाज को मात्र उपदेश ही नहीं दिया था किन्तु अक्षरशः उन्होंने उसे अपने जीवन में भी उतारा था। निग्गण्ठ नायपुत्त[1] (भगवान महावीर स्वामी) ने गृहस्थावस्था को त्यागकर मुनि अवस्था धारण करने के बाद तो इस सिद्धान्त को पूर्णरूपेण अपने जीवन में आत्मसात् किया ही था किन्तु जब आप गृहस्थावस्था में

---

१ बौद्ध ग्रंथों में श्रमण भगवान महावीर का 'निग्गण्ठ नायपुत्त' के नाम से उल्लेख हुआ है किन्तु जैनागमों में निगण्ठ नायपुत्त नाम आता है। हम ने इस निबंध में जैन आगमों के अनुसार सर्वत्र निर्ग्रन्थ ज्ञातपुत्त लिखा है।

थे तभी से आपने सचित्त पदार्थों का सेवन करना छोड़ दिया था। यह बात जनागमों के अभ्यासी से छिपी नहीं है।

जैन धर्मनिष्ठ गृहस्थ जिन्हें श्रावक अथवा श्रमणोपासक कहते हैं वे भी मांस खान में से या परहेज करते हैं। मात्र इतना ही नहीं परन्तु रात्रिभोजन का सेवन भी सी लिए नहीं करते कि इस भोजन के साथ त्रस जीवों का पेट में चले जाना संभव है। इस लिए मांसाहार का दोष भी लग सकता है। *जब कोई भी व्यक्ति जैन धर्म स्वीकार करता है तब उस श्रावक के बारह* व्रतों में से सर्वप्रथम 'स्थूल प्राणातिपातविरमण व्रत' ग्रहण करना पड़ता है जिसका प्रयोजन यही है कि त्रस (हलन-चलन की क्षमता वाले) जीवों की हिंसा का त्याग और स्थावर (स्थिर) जीवों की हिंसा की यतना। मांस त्रस जीवों को मारने से बनता है जब श्रावक के लिये त्रस जीवों की हिंसा का त्याग है तब वह मांस को कैसे ग्रहण कर सकता है? आज भी जैन गृहस्थ, जिन्हें कि जैन धर्म पर श्रद्धा है वे कदापि मांस भक्षण नहीं करते। इस कारण से आज भी यह बात जगत्प्रसिद्ध है कि यदि कोई व्यक्ति मांसभक्षण तथा रात्रिभोजन न करता हो तो लोग उसे तुरन्त कह देते हैं— यह व्यक्ति जैनधर्मानुयायी है।

यह तो हुई भगवान महावीर निर्ग्रंथ मुनि तथा जैन गृहस्थों की बात। परन्तु आप यह जान कर आश्चर्यचकित होंगे कि जो जातियाँ किसी समय में जैन धर्म का पालन करती थीं किन्तु अनेक शताब्दियों से जैन श्रमणों का उनके प्रदेशों में आवागमन न होने से व अन्य धर्मावलम्बियों के प्रचारकों के प्रभाव से जैन धर्म को भूल कर अन्य धर्म-सम्प्रदायों की अनुयायी बन चुकी हैं और उन्हें इस बात का ज्ञान है कि उनके पूर्वज जैन धर्मानुयायी थे वे आज तक भी मांस भक्षण तथा रात्रिभोजन और अभक्ष्य वस्तुओं का *भक्षण नहीं करतीं। जिनमें से यहाँ एक ऐसी जाति का परिचय देने* से हमारी इस धारणा की पुष्टि मिलेगी।

बंगाल देश में जहाँ आज भी मांस मत्स्यादिभक्षण का खूब प्रचार है वहाँ सर्वत्र लाखों की संख्या में एक ऐसी मानव जाति [illegible]

जो सराक के नाम से प्रसिद्ध है। सराक शब्द "सरावक-श्रावक" का अपभ्रंश होकर बना है। ये लोग कृषि, कपड़ा बनने तथा दुकानदारी आदि का व्यवसाय करते हैं। ये लोग उन प्राचीन जैन श्रावकों के वंशज हैं जो जैन जाति के अवशेष रूप हैं। यह जाति आज प्रायः हिंदू धर्म की अनुयायी हो गई है। यहां-वहां अभी तक ये लोग अपने आपको जैन समझते हैं। इस जाति के विषय में अनेक पाश्चात्य तथा पौर्वात्य विद्वानों ने उल्लेख किया है। जिसका संक्षिप्त परिचय इस प्रकार है।

१ मि० गेट अपनी सेंसस रिपोर्ट में लिखते हैं कि —

इस बंगाल देश में एक खास तरह के लोग रहते हैं। जिनको सराक कहते हैं। इनकी संख्या बहुत है। ये लोग मूल में जैन थे, तथा इन्हीं की दन्तकथाओं एवं इनके पड़ौसी भूमिजों की दन्तकथाओं से मालूम होता है कि—ये एक ऐसी जाति की सन्तान हैं जो भूमिजों के आने के समय से भी पहले बहुत प्राचीन काल से यहां बसी हुई है। इनके बड़ों ने पार छर्रा बोरा और भूमिजों आदि जातियों के पहले अनेक स्थानों पर मन्दिर बनवाए थे। यह अब भी सदा से ही एक शान्तिमयी जाति है जो भूमिजों के साथ बहुत मेल-जोल से रहती है। कर्नल डलटन के मतानुसार ये जैन हैं और ईसा पूर्व छठी शताब्दी (Sixth Century B C) से ये लोग यहां आबाद हैं।

यह शब्द सराक निःसन्देह "श्रावक" से ही निकला है जिस का अर्थ संस्कृत में सुनने वाला होता है। जैनों में यह शब्द गृहस्थों के लिये आता है जो लौकिक व्यवसाय करते हैं और जो यति या साधु से भिन्न हैं।

(मि० गेट सेंसस रिपोर्ट)

---

१ जैनागमों में श्रावक शब्द गृहस्थ व्रतधारी जैनों के लिये आया है परन्तु बौद्धों ने श्रावक शब्द बौद्ध भिक्षुओं के लिये प्रयोग किया है। 'सराक' जो कि श्रावक शब्द का अपभ्रंश है यह गृहस्थों की जाति के लिये प्रसिद्ध है। इसलिये यह जाति जैन गृहस्थ-श्रमणोपासकों का अवशेष है इसमें सन्देह नहीं है।

२ मि० सरसली कहते ह कि—

यद्यपि मानभूम व 'सराक' अब हिन्दू हैं परन्तु वे अपने को प्राचीन काल म जन होने की बात को जानते हैं। वे पक्के शाकाहारी हैं मात्र इतना ही नहीं परन्तु काटना के शब्द का भी वे व्यवहार म नहीं लाते।

३ मि० एफकूप लड का मत ह कि—

सराक लोग हिंसा से घृणा करते हैं। जिनका खाना अच्छा समझते हैं। सूर्योदय विना भोजन नहीं करते। गूलर आदि कीड वाले फलों को भी नहीं खाते। श्री पार्श्वनाथ (जनों के तेईसवें तीर्थंकर) को पूजते हैं और उन्हें अपना कुलदेवता मानते हैं। इनके गृहस्थाचार भी सराकों की तरह कदापि रात्रिभोजनादि नहीं करते। इनमे एक कहावत भी प्रसिद्ध है—

"डाह डूमर (गूलर) पोड़ो छाती ए चार नहीं खाये सराक जाति।"[1]

४ A S B 1868 N/85 में लिखा ह कि —

They are represented as having great scruples against taking life They must not eat till they have seen the sun (before sunrise) and they venerate Parashvanath.

*अर्थात—*वे (सराक) एसे लोगों के अनुयायी हैं जो जीवहत्या रूप हिंसा म अत्यन्त घृणा करते हैं और वे सूर्योदय होने से पहले कदापि नहीं खाते तथा वे श्री पार्श्वनाथ के पूजक हैं।

५ मि० बेगलर व कर्नल डलटन का मत ह कि —

ब्राह्मणों व उनके मानने वालों ने ईसा की सातवीं शताब्दी के बाद उन श्रावकों को अपने प्रभाव से दबा लिया। जो कुछ बचे और उनके धर्म में नहीं गए वे इन स्थानों से दूर जाकर रहे।

---

१ इन सब बातों का खुलासा श्रावक के सातवें 'भोगोपभोग-परिमाण व्रत' अगले स्तम्भ म करेंगे। और बतलायेंगे कि [illegible] नियमों का पालन अनिवार्य होता है।

(६) यह बात बड़े गौरव की है कि जिस जाति को जैन धर्म भूले हुए आज तेरह सौ वर्ष हो गये हैं उनके वंशज आज तक बगाल जैसे मांसाहारी देश में रहते हुए भी कट्टर निरामिषाहारी हैं। इस जाति में मत्स्य तथा मांस का व्यवहार सर्वथा वर्ज्य है। यहाँ तक कि बालक भी मत्स्य या मांस नहीं खाते। मांसाहारी और हिंसकों के मध्य में रहते हुए भी ये लोग पूर्ण अहिंसक तथा निरामिषभोजी हैं।

७ कर्नल डेल्टन का मत है कि —

इस जाति को यह अभिमान है कि इस में कोई भी व्यक्ति किसी फौजदारी अपराध में दण्डित नहीं हुआ। और अब भी संभव है कि इन्हें यही अभिमान है कि इस ब्रिटिश राज्य में भी किसी का अब तक कोई फौजदारी अपराध पर दड नहीं मिला। ये वास्तव में शान्त और नियम से चलने वाले हैं। अपने आप और पड़ौसियों के साथ शांति से रहते हैं। ये लोग बहुत प्रतिष्ठित तथा बुद्धिमान मालूम होते हैं।

(८) इनका जैन मन्दिर और जैन तीर्थंकर गणधरों निर्ग्रथो श्रावक, श्राविकाओं की मूर्तियाँ आज भी इस देश में सर्वत्र इधर उधर बिखरी पड़ी हैं जो कि सराक लोगों के द्वारा निर्मित तथा प्रतिष्ठित कराई गयी हैं। (A S B 1868)

सारांश यह है कि हजारों वर्षों में अपने मूल धर्म (जैन धर्म) को भूल जाने पर भी और अन्य मांसाहारी धर्म-सम्प्रदायों में मिल जाने के बाद भी इन सराकों में जैन धर्म के आचार सम्बन्धी अनेक विशेषताएँ आज भी विद्यमान हैं।

इस सारे विवेचन से यह बात स्पष्ट है कि जैन धर्म निर्यामक निर्ग्रन्थ ज्ञातपुत्र भगवान् महावीर आदि तीर्थंकरों ने अहिंसा का एसा अलौकिक आदर्श स्वयं अपने आचरण में लाकर विश्व के लोगों को इस पर चलने का आदेश दिया जिसके परिणाम स्वरूप जिन्होंने उन धर्म का स्वीकार किया एसा जैन संघ (साधु-साध्वी, श्रावक-श्राविका)

आज के गद और दूषित वातावरण (जिसमे मांस-मत्स्य तथा मन्दिरा जसी घणित वस्तुओं का विश्वव्यापी प्रचार हो रहा है) मे भी अक्षुण्ण रूप से निरामिषाहारी है। मात्र इतना ही नही परन्तु जैन तीर्थकरो की अहिंसा की लागा पर उस समय इतनी गहरी छाप पडी थी कि जो सराकादि जातियाँ हजारो वर्षोंसे जन धर्म को भूल चुकी हैं वे भी आजतक कट्टर निरामिषभोजी रही हैं। श्रमण भगवान महावीर की अहिंसा ने उस समयकी सर्वसाधारण जनता पर इतना जबरदस्त प्रभाव डाला कि उस समय के बौद्ध आदि प्राय्यग मत्स्य-मांसादि भक्षक सम्प्रदायो को भी अपने सैद्धान्तिक रूप से इच्छा से नही तो दबाव से अथवा लोकनिन्दा के भय से ही अहिंसा के सिद्धान्त को किसी न किसी रूप से अपनाना पडा। इस लिये यह कहना कोई अतिशयोक्ति नही है कि अहिंसा का प्रधान सम्बन्ध जनो के साथ ही है।

भारतगौरव स्वर्गवासी लोकमान्य तिलक ने तो स्पष्ट रूप से यह बात स्वीकार की है कि— जन धर्म की अहिंसा ने वदिक-ब्राह्मण धर्म पर गहरी छाप डाली है। जब भगवान महावीर जन धर्म को पुन प्रकाश मे लाये तब अहिंसा धर्म खूब ही व्यापक हुआ। आज कल यज्ञो मे जो पशु-हिंसा नही होती—ब्राह्मण और हिन्दू धर्म मे मास भक्षण और मदिरा-पान बन्द हो गया है वह भी जन धर्म का ही प्रताप है।'

अहिंसा तो जन धर्म का मूल सिद्धान्त है, प्राण है और इसका पहला पाठ मांसाहार निषेध से ही प्रारम्भ होता है। जनधर्म की मान्यता है कि चाहे भगवान महावीर हो या बुद्ध अथवा कोई भी महान व्यक्ति क्यो न हो यदि वह मांसाहार करता है तो वह भगवान पद का अधिकारी कभी नही हो सकता। मांसाहारी न तो स्व स्वरूप को समझ सकता है और न ही शुद्ध और सम्पूर्ण ज्ञान की प्राप्ति कर सकता है, इसलिये वह अनन्त सुख का मार्ग भी नही खोज सकता और न ही वह उसका पालन कर सकता है

जैन गृहस्थो (श्रावक-श्राविकायो) का आचार

जन गृहस्थो म पुरुष को श्रावक तथा स्त्री को श्राविका कहते हैं।

(क) गृहस्थ धम की पूव भूमिका

सघविभाजन—तीथकर भगवान ने जब धमशासन की स्थापना की तो स्वाभाविक ही था कि उस स्थायी और व्यापक रूप दन के लिय व सघ की स्थापना करते। क्योकि सघ के बिना धम टिक नहीं सकता।

जन सघ चार श्रणियों में विभक्त है—

१ साधु २ साध्वी ३ श्रावक ४ श्राविका।

इसम साधु-साध्वी का आचार लगभग एक जसा है और श्रावक-श्राविका का आचार एकसा है।

मुनि (साधु-साध्वी) के आचार का उल्लेख आग करेंगे। यहाँ पर श्रावक-श्राविका के आचार का वणन करते हैं क्योंकि श्रावक-श्राविका का भी जन शासन म महत्त्वपूण स्थान है। श्रावक का आचार मुनियम के लिये नीव के समान है। इसी के उपर मुनि के आचार का भव्य प्रासाद निर्मित हुआ है।

श्रावक पद का अधिकारी—

जन धम म जन मुनियो के लिय आवश्यक आचार प्रणालिका निश्चित है और उस आचार का पालन करनेवाला साधक ही मुनि कहलाता है। उसी प्रकार श्रावक होन के लिये भी कुछ आवश्यक शर्तें हैं। प्रत्येक गृहस्थ भाव श्रावक नहा कहला सकता, बल्कि विशिष्ट व्रतों।

वाला ... व स्त्री ही ...

जैन परम्परा के अनुसार श्रावक-श्राविका बनने की योग्यता प्राप्त करने के लिए निम्नलिखित सात दुर्व्यसनों का त्याग करना आवश्यक है –

१ जुआ खेलना २ मांसाहार ३ मदिरापान ४ वेश्यागमन, ५ शिकार, ६ चोरी ७ परस्त्रीगमन अथवा परपुरुषगमन । ये सात दुर्व्यसन[1] हैं ।

ये सातों ही दुर्व्यसन जीवन को अधःपतन की ओर ले जाते हैं ।[2] इनमें से किसी भी एक व्यसन में फंसा हुआ अभागा मनुष्य प्रायः सभी व्यसनों का शिकार बन जाता है ।

इन सात व्यसनों में से नियम पूर्वक किसी भी व्यसन का सेवन न करने वाले ही श्रावक-श्राविका बनने के पात्र होते हैं ।

(ख) श्रावक बनने के लिये —

उपर्युक्त सात व्यसनों के त्याग के अतिरिक्त गृहस्थ में अन्य गुण भी होने चाहिये । जैन परिभाषा में उन्हें मार्गानुसारी गुण कहते हैं । इन गुणों में से कुछ ये हैं —

नीति पूर्वक धनोपार्जन करे शिष्टाचार का प्रशंसक हो गुणवान पुरुषों का आदर करे मधुरभाषी हो लज्जाशील हो शीलवान हो, माता पिता का भक्त एवं सेवक हो धर्मविरुद्ध देशविरुद्ध—एवं कुलविरुद्ध कार्य न करने वाला हो आय से अधिक व्यय न करनेवाला हो प्रतिदिन धर्मोपदेश सुनने वाला हो देव-गुरु (जिनेन्द्र प्रभु तथा निर्ग्रंथ गुरु) की भक्ति करने वाला हो नियत समय पर परिमित सात्त्विक भोजन करने वाला अतिथि-दीन-हीन जनों का एवं साधु-संतों का यथोचित सत्कार करने

---

१ मज्जपसंगी चोज्जपसंगी मंसपसंगी जूयपसंगी वेसापसंगी परदारपसंगी । (ज्ञातासूत्र अ० १८ सू० १३७)

जल-थल-खमचारिणो य पंचिन्दिए पसुगणे बिय तिय चउरिन्दिए य विविहजीवे पियजीविए मरणदुक्खपडिकूले वराए हणंति ।

(प्रश्नव्याकरण प्रथम अ०)

२ विपाकसूत्र—दुःखविपाक (सप्त दुर्व्यसनों का फल)

वाला, गणों का पक्षपाती अपने आश्रित जनों का पालन-पोषण करने वाला, आगा-पीछा सोचने वाला सौम्य परोपकारपरायण काम क्रोधादि अन्तरिक शत्रुओं का दमन करने में उद्यत और इन्द्रियों पर काबू रखने वाला हो। इत्यादि गुणों से युक्त गृहस्थ ही श्रावकधर्म का अधिकारी है।

एवं प्रत्येक तत्त्व के स्वरूप को सम्यक् प्रकार से जानने की अभिरुचि से तत्त्वों के वास्तविक स्वरूप को जानते हुए सत् श्रद्धान वाला गृहस्थ ही श्रावकधर्म का अधिकारी है।[१]

(ग) श्रावकधर्म

जैन शास्त्र का विधान है— चारित्तं धम्मो। अर्थात् चारित्र ही धर्म है।" चारित्र क्या है? इस प्रश्न का समाधान करते हुए कहा गया है—

"असुहाओ विणिवित्ती सुहे पवित्ती य जाण चारित्तं।"

अर्थात्—अशुभ कर्मों से निवृत्त होना तथा शुभ कर्मों में प्रवृत्त होना चारित्र कहलाता है। वस्तुतः सम्यक्चारित्र या सदाचार ही मनुष्य की विशेषता है। सदाचारहीन जीवन गन्धहीन पुष्प के समान है।

गृहस्थ वर्ग के लिए प्रतिपादित बारह व्रतों में से मात्र पहला अहिंसाणु-व्रत, सातवाँ भोगोपभोगपरिमाण व्रत तथा आठवाँ अनर्थदण्डत्याग व्रत—इन तीन व्रतों का ही यहाँ सन्दर्भ में उल्लेख किया जाता है। क्योंकि इस निबन्ध का उद्देश्य मांसाहार आदि अभक्ष्य पदार्थों के भक्षण का परिहार है, जिस का समावेश इन तीनों व्रतों में होता है। अतः विस्तार भय से बारह व्रतों के स्वरूप का उल्लेख करना उचित नहीं समझा गया।

श्रावक श्राविकाओं के बारह व्रतों के नाम

पाँच अणुव्रत—१ स्थूल प्राणातिपातविरमण अहिंसा

१ सम्यग्ज्ञानपूर्वक मा त्याग[illegible]

२ सत्याणुव्रत, ३ अचौर्याणुव्रत ४ ब्रह्मचर्याणुव्रत, ५ परिग्रह-परिमाण अणुव्रत।

तीन गुणव्रत—६ दिग्व्रत, ७ भोगोपभोगपरिमाण व्रत, ८ अनर्थदण्डत्याग व्रत।

चार शिक्षाव्रत—९ सामायिक व्रत १० देशावकाशिक व्रत, ११ पौषधोपवास व्रत १२ अतिथिसंविभाग व्रत।

(घ) श्रावक-श्राविका का अहिंसाणुव्रत

पहला व्रत स्थूल प्राणातिपातविरमण व्रत अर्थात्—जीवों की हिंसा से विरत होना। संसार में दो प्रकार के जीव हैं स्थावर और त्रस। जो जीव अपनी इच्छानुसार स्थान बदलने में असमर्थ हैं वे स्थावर कहलाते हैं। पृथ्वीकाय अप्काय (पानी) अग्निकाय वायुकाय तथा वनस्पति काय—ये पांच प्रकार के स्थावर जीव हैं। इन जीवों के सिर्फ स्पर्शेन्द्रिय होती है। अतएव इन्हें एकेन्द्रिय जीव भी कहते हैं।

दुःख-सुख के प्रसंग पर जो जीव अपनी इच्छा के अनुसार एक जगह से दूसरी जगह पर आते-जाते हैं जो चलते फिरते और बोलते हैं वे त्रस हैं। इन त्रस जीवों में कोई दो इन्द्रियों वाले कोई तीन इन्द्रियों वाले कोई चार इन्द्रियों वाले कोई पांच इन्द्रियों वाले होते हैं। संसार के समस्त जीव त्रस और स्थावर विभागों में समाविष्ट हो जाते हैं।

मुनि दोनों प्रकार के जीवों की हिंसा का पूर्ण रूप से त्याग करते हैं। परन्तु गृहस्थ ऐसा नहीं कर सकते अतएव उनके लिए स्थूल हिंसा के त्याग का विधान किया गया है। निरपराध त्रस जीवों की संकल्प पूर्वक की जाने वाली हिंसा को ही गृहस्थ त्यागता है।

जैन शास्त्रों में हिंसा चार प्रकार की बतलाई गयी है—[1]

१ आरम्भी हिंसा, २ उद्योगी हिंसा ३ विरोधी हिंसा, ४ संकल्पी हिंसा।

---

१ प्रश्नव्याकरणसूत्र आश्रवद्वार

१ जीवननिर्वाह के लिये आवश्यक भोजन-पान के लिये, और परिवार के पालन-पोषण के लिये अनिवार्य रूप से होने वाली हिंसा आरम्भी हिंसा है।

२ गृहस्थ अपनी आजीविका चलाने के लिये कृषि गोपालन व्यापार आदि उद्योग करता है और उन उद्योगों में हिंसा की भावना न होने पर भी हिंसा होती है वह उद्योगी हिंसा कहलाती है।

३ अपने प्राणों की रक्षा के लिये कुटुम्ब-परिवार की रक्षा के लिये अथवा आक्रमणकारी शत्रुओं से देशादि की रक्षा के लिये की जाने वाली हिंसा विरोधी हिंसा है।

४ किसी निरपराधी प्राणी को जान बूझ कर मारने की भावना से हिंसा करना संकल्पी हिंसा है।

इस चार प्रकार की हिंसा से गृहस्थ पहले व्रत में संकल्पी हिंसा का त्याग करता है और शेष तीन प्रकार की हिंसा में से यथाशक्ति त्याग करके अहिंसा व्रत का पालन करता है।

१ अहिंसा व्रत का शुद्ध रूप से पालन करने के लिये इन पाँच दोषों से बचना चाहिये —

१ किसी जीव को मारना-पीटना त्रास देना।

२ किसी का अंग भंग करना किसी को अपंग बनाना विरूप करना।

३ किसी को बन्धन में डालना यथा तोते-मैना आदि पक्षियों को पिंजरे में बन्द करना कुत्ते आदि को रस्सी में बाँध रखना। ऐसा करने से उन प्राणियों की स्वाधीनता नष्ट हो जाती है और उन्हें व्यथा पहुंचती है।

४ घोड़े बैल खच्चर ऊँट गधे आदि जानवरों पर उनकी सामर्थ्य से अधिक बोझ लादना नौकरों से अधिक काम लेना।

५ अपने आश्रित प्राणियों को समय पर भोजन-पानी न देना।

इन उपर्युक्त समस्त दोषों का त्याग 'अहिंसाणुव्रत' की भावना में आवश्यक है।

सूत्र अ० १।

(ङ) सातवाँ भोगोपभोगपरिमाण व्रत—

एक बार भोगने योग्य आहार आदि भोग कहलाते हैं। जिन्हें पुन पुन भोगा जा सके ऐसे वस्त्र, पात्र मकान आदि उपभोग कहलाते हैं।[1] इन पदार्थों को काम में लाने की मर्यादा बांध लेना 'भोगोपभोगपरिमाण व्रत' है। यह व्रत भोजन और कर्म (व्यवसाय) से दो भागों में विभक्त किया गया है। भक्ष्य (मानव के खान-पीने योग्य) भोजन पदार्थों की मर्यादा करने और अभक्ष्य (मानव के न खाने-पीने योग्य) पदार्थों का त्याग करने का इस व्रत के पहले भाग में विधान है। भोजन (भक्ष्य) पदार्थों की मर्यादा करने से लोलुपता पर विजय प्राप्त होती है तथा अभक्ष्य पदार्थों (मांस, मदिरा आदि) के त्याग से लोलुपता के त्याग के साथ हिंसा का त्याग भी हो जाता है। दूसरे भाग में व्यापार सबंधी मर्यादा कर लेने से पाप-पूर्ण व्यापारों का त्याग हो जाता है।

इस व्रत को अङ्गीकार करने वाला साधक मदिरा मांस शहद तथा दो घड़ी (४८ मिनट) छाछ में से निकालने के बाद का मक्खन (क्योंकि दो घड़ी के बाद मक्खन में त्रस जीव उत्पन्न हो जाते हैं), पाँच उदुम्बर फल (बड़-पीपल पिलखण-कठुमर गूलर के फल) रात्रिभोजन इत्यादि का त्याग करता है। क्योंकि इन सब में त्रस जीवों की उत्पत्ति होती रहती है इस लिये इनके भक्षण से मांसाहार का दोष लगता है जो कि श्रावक के लिये सर्वथा वर्जित है।[2] सारांश यह है कि ऐसे सब प्रकार के पदार्थ, जिनमें

१ सकृदेव भुज्यते यः स भोगोऽन्नस्रगादिकः।
पुनः पुनः पुनर्भोग्य उपभोगोऽङ्गनादिकः॥
(योगशास्त्र प्र० ३ श्लो० ५)।

२ मद्यं मांसं नवनीतं मधूदुम्बरपञ्चकम्।
अनन्तकायमज्ञातफलं रात्रौ च भोजनम्॥ ६॥
आमगोरससम्पृक्तं द्विदलं पुष्पितौदनम्।
दध्यहर्द्वितयातीतं कुथितान्नं च वर्जयेत्॥ ७॥
(आ० हेमचन्द्रकृत योग शास्त्रे प्र० ३)।

अपना से अभिप्राय की सम्भावना हो अथवा बुद्धि में विकार आवे श्रावक के लिए वर्जित हैं।¹ एवं व्यापार जिन में त्रस जीवों की हिंसा विशेष रूप से सम्भव हो, श्रावक के लिए वर्जित है। जैसे—कोयले का भट्टा बनाना, ठेका लेकर जंगल का कटवाना, हाथी दांत आदि का व्यापार करना, मदिरा आदि मादक वस्तुओं का विक्रय करना, प्राणघातक विष बेचना और दुराचारिणी स्त्रियों से दुराचार करवा कर द्रव्योपार्जन करना, आदि निंद्य व्यापारों का भी श्रावक त्याग कर देता है।

(घ) आठवां अनर्थदंडविरमण व्रत—

अनर्थदण्डत्याग—बिना प्रयोजन हिंसादि करना अनर्थदण्ड कहलाता है। इसका भी श्रावक को त्याग करना चाहिए।

---

१ (क) मदिरा के दोष—

विवेकः संयमो ज्ञानं सत्यं शौचं दया क्षमा।
मद्यात्प्रलीयते सर्वं तृण्या वह्निकणादिव ॥ १६ ॥
दोषाणां कारणं मद्यं मद्यं कारणमापदाम्।
रोगातुर इवापथ्यं तस्मान्मद्यं विवर्जयेत् ॥ १७ ॥

(ख) मांस के दोष—

चिखादिषति यो मांसं प्राणिप्राणापहारतः।
उन्मूलयत्यसौ मूलं दयाख्यं धर्मशाखिनः ॥ १८ ॥
अशनीयन् सदा मांसं दयां यो हि चिकीर्षति।
ज्वलति ज्वलने वल्लीं स रोपयितुमिच्छति ॥ १९ ॥
सद्यः संमूर्छितानन्तजन्तुसन्तानदूषितम्।
नरकाध्वनि पाथेयं, कोऽश्नीयात् पिशितं सुधीः ? ॥२३॥

(ग) नवनीत (मक्खन) के दोष—

अन्तर्मुहूर्तात्परतः सुसूक्ष्मा जन्तुराशयः।
यत्र मूर्छन्ति तन्नाद्यं नवनीतं विवेकिभिः ॥ ३४ ॥

(घ) मधु (शहद) के दोष—

अनेकजन्तुसंघातनिघातनसमुद्भवम्।

विवेकशून्य मनुष्यों की मनोवृत्ति चार प्रकार से व्यर्थ पाप का उपार्जन करती है—

१ अपध्यान—दूसरों का बुरा विचारना।

२ प्रमादाचरित—जाति कुल आदि का मद करना तथा विकथा, निन्दा आदि करना।

३ हिंस्रप्रदान—हिंसा के साधन—तलवार, बन्दूक, तोप बम आदि का निर्माण करके दूसरों को देना संहारक शस्त्रों का आविष्कार करना।

४ पापोपदेश—पापजनक कार्यों का उपदेश देना।

इस व्रत को अङ्गीकार करनेवाला साधक कामवासनावर्धक वार्तालाप नहीं करता। कामोत्तेजक कुचेष्टाएं नहीं करता। असभ्य फूहड़ वचनों का प्रयोग नहीं करता। हिंसाजनक शस्त्रों का निर्माण नहीं करता, इनके आविष्कार व विक्रय में भाग नहीं लेता और भोगोपभोग के योग्य पदार्थों में अधिक आसक्त नहीं होता।

इस प्रकार श्रावक-श्राविकाएँ हिंसा-सामिषाहार आदि दोषों से बचने के लिये उपर्युक्त व्रतों का सावधानी से पालन करते हुए सदा जागरूक

(ड) पाँच उदुंबर फलों के दोष—
उदुम्बर-वट प्लक्ष-काकोदुम्बर शाखिनाम्।
पिप्पलस्य च नाश्नीयात्फलं कृमिकुलाकुलम् ॥ ४२ ॥

(च) रात्रिभोजन के दोष—
घोरान्धकाररुद्धाक्षैः पतन्तो यत्र जन्तवः।
नैव भोज्ये निरीक्ष्यन्ते तत्र भुञ्जीत को निशि ? ॥ ४९ ॥

(छ) गोरस कच्चे से मिश्रित द्विदल के दोष—
आमगोरससम्पृक्तद्विदलादिषु जन्तवः।
दृष्टा केवलिभिः सूक्ष्मास्तस्मात्तानि विवर्जयेत् ॥ ७१ ॥

(ज) जन्तु मिश्रित पुष्प-फल में दोष—
जन्तुमिश्रं फलं पुष्पं पत्रं चान्यदपि त्यजेत्।
सन्धानमपि संसक्तं जिनधर्मपरायणः ॥ ७२ ॥
(आचार्य हेमचन्द्रकृत योगशास्त्र प्रकाश ३)।

रहते रहे हैं। इससे स्पष्ट है कि जैन धर्मानुयायी श्रमणोपासक गृहस्थ न तो मांस खरीद कर ला सकते हैं न पका सकते हैं न खा सकते हैं और न ही अपने हाथों से पचेंद्रियादि जीवों का वध करके मांस बना सकते हैं।

हम पहले स्तम्भ में सराक जाति का परिचय दे आये हैं जिस में उनका खान-पान-आचार सम्बन्धी संक्षिप्त विवरण (नं० ३) दिया है। उससे यह स्पष्ट है कि उन लोगों का आचार और विचार भी श्रावक के इन उपर्युक्त व्रतों के सर्वथा अनुकूल चला आ रहा है। अतः स्पष्ट है कि जैन संघ में सामिषाहार का प्रचलन प्राचीन काल से लेकर आज पर्यंत कदापि संभव नहीं है।

---

[३]

निर्ग्रन्थ श्रमण [जैन साधु-साध्वी] का आचार

जैनागमों में त्यागमय जीवन अङ्गीकार करने वाले व्यक्ति की योग्यता का विस्तृत वर्णन किया है। आयु का कोई प्रतिबन्ध न होने पर भी जिसे शुभ तत्त्व-दृष्टि प्राप्त हो चुकी है जिसने आत्मा-अनात्मा के स्वरूप को समझ लिया है जो भोग राग और इन्द्रियों के विषयों को विष समझ चुका है तथा जिसके मानस सर में वैराग्य की ऊर्मियाँ लहराने लगी हैं वही त्यागी निर्ग्रन्थ बनने के योग्य है। पूर्ण विरक्त होकर शरीर सम्बन्धी ममत्व का भी त्याग करके जो आत्म-आराधना में मग्न रहना चाहता है वह जैन मुनिधर्म अर्थात् जैन दीक्षा ग्रहण करता है।

उसे घर-बार, धन-दौलत, स्त्री परिवार, माता पिता, खेत-जमीन आदि पदार्थों का त्याग करना पड़ता है। सच्चा श्रमण वही है जो अपने आन्तरिक विकारों पर विजय प्राप्त कर सकता है। वह अपनी पीड़ा को वर्तमान मान कर तटस्थ भाव से सहन कर जाता है मगर पर-पीड़ा उसके लिये असह्य होती है। जैन साधु वह नौका है जो स्वयं तरती है तथा दूसरों को भी तारता है।

भगवान् महावीर कहते हैं—साधुओ! श्रमण निर्ग्रन्थों के लिये लाघव-कम-से-कम साधनों से निर्वाह करना निरीहता-निष्काम वृत्ति अमूर्छा-अनासक्ति अगृद्धि अप्रतिबद्धता शान्ति नम्रता सरलता निर्लोभता ही प्रशस्त है।

जैन भिक्षु के लिये पाँच महाव्रत अनिवार्य हैं। छठे रात्रिभोजन का भी सर्वथा त्याग होता है। इन महाव्रतों का भलीभाँति पालन किये बिना नहीं कहला सकता। महाव्रत इस प्रकार हैं —

"पाणिवह-मुसावाया-अदत्त-मेहुण-परिग्गहा विरओ ।
राईभोयणविरओ, जीवो भवइ अणासवो ।"

१ अहिंसा महाव्रत—जीवन पर्यन्त त्रस (हलन-चलन की सामर्थ्य वाले) और स्थावर (एक स्थान पर स्थिर रहने वाले) सभी जीवों को मन वचन काया से हिंसा न करना दूसरों से न कराना और हिंसा करने वाले को अनुमोदन न देना—अहिंसा महाव्रत है।

साधु प्राणिमात्र पर करुणा की दृष्टि रखता है। अतएव वह निर्जीव हुए अचित्त अन्न का ही सेवन करता है। अग्निकाय के जीवों की हिंसा से बचने के लिए अग्नि का उपयोग नहीं करता। पंखा आदि हिला कर वायु की उदीरणा नहीं करता। पृथ्वीकाय के जीवों की रक्षा के लिये जमीन खोदने आदि का क्रियाएँ नहीं करता। वह अचित्त-जीवरहित आहार का ही ग्रहण करता है। मांसाहार सर्वथा सजीव होने से उसका सर्वथा त्यागी होता है। महाव्रतधारी जैन साधु स्थावर और चलते फिरते त्रस जीवों की हिंसा का पूर्ण त्यागी होता है।

जैन मुनि रात्रि भोजन का भी त्यागी होता है क्योंकि रात्रि भोजन में आसक्ति और राग की भावना होती है तथा जीव जन्तु आदि के गिर जाने से हिंसा एवं मांसाहार दोष का लगना भी सम्भव है।

श्रमण भगवान महावीर फरमाते हैं कि —

सूर्य के उदय से पहले तथा सूर्य के अस्त हो जाने के बाद निर्ग्रंथ मुनि को सभी प्रकार के भोजन-पान आदि का मन से भी इच्छा नहीं करनी चाहिये। क्योंकि संसार में बहुत से त्रस जीव (चलने फिरने उड़ने वाले) और स्थावर (एक स्थान पर रहने वाले) प्राणी बड़े ही सूक्ष्म होते हैं। वे रात्रि में देखे नहीं जा सकते तो रात्रि में भोजन कैसे किया जा सकता है?

जमीन पर कहीं पानी पड़ा होता है, कहीं बीज बिखर होते हैं और कहीं पर सूक्ष्म काड़-मकौड़ आदि जीव होते हैं। दिन में उन्हें

समय नहीं है। रात्रि का भोजन आदि में त्रस जीवों का पड़ जाना प्रायः सम्भव होने से हिंसा एवं मांसाहार के दोष से प्रायः बचा नहीं जा सकता। इस प्रकार सब दोषों को देखकर ही ज्ञातपुत्र भगवान् महावीर ने कहा है कि 'निग्रंथ मुनि रात्रि को किसी भी प्रकार से भोजन न करे।'

अशनादि चारों ही प्रकार के आहार (१ अशन—वह खुराक जिससे भूख मिटे २ पान—वह आहार जिससे प्यास आदि मिटे ३ खाद्य—वह आहार जिससे थोड़ी तृप्ति हो जैसे फलादि ४ स्वाद्य—इलायची सुपारी आदि) का रात्रि में सेवन नहीं करना चाहिये। इतना ही नहीं दूसरे दिन के लिये भी रात्रि में खाद्य सामग्री का संग्रह करना निषिद्ध है। अतः अहिंसा महाव्रत धारी श्रमण रात्रिभोजन का सर्वथा त्यागी होता है।

२ सत्य महाव्रत—मन से सत्य सोचना वाणी से सत्य बोलना और काम से सत्य का आचरण करना तथा सूक्ष्म असत्य का भी प्रयोग न करना सत्य महाव्रत है।

जैन साधु मन-वचन तथा काया से कदापि असत्य का सेवन नहीं करता। उसे मौन रहना प्रियतर प्रतीत होता है फिर भी प्रयोजन होने पर परिमित हितकर, मधुर और निर्दोष भाषा का ही प्रयोग करता है। वह बिना सोचे विचारे नहीं बोलता। हिंसा को उत्तेजन देने वाला वचन मुख से नहीं निकालता। हंसी मजाक आदि बातों से जिनके कारण असत्य भाषण की संभावना रहती है, उससे दूर रहता है।

३ अचौर्य महाव्रत—मुनि संसार की कोई भी वस्तु, उसके स्वामी की आज्ञा के बिना ग्रहण नहीं करता चाहे वह शिष्यादि हो चाहे निर्जीव घासादि हो। दाँत साफ करने के लिये तिनका जैसी तुच्छ वस्तु भी मालिक की आज्ञा बिना नहीं लेता।

४ ब्रह्मचर्य महाव्रत—जैन मुनि काम वृत्ति और वासना का नियमन करके पूर्ण ब्रह्मचर्य का पालन करता है। इस दुर्धर महाव्रत का पालन करने के लिये अनेक नियमों का कठोरता से पालन करना पड़ता है। उन में से कुछ इस प्रकार हैं—

(क) जिस मकान में स्त्री पशु नपुंसक का निवास हो उसमें न रहना।

(ख) स्त्री के हाव भाव विलास आदि का वर्णन न करना।

(ग) स्त्री-पुरुष का एक आसन पर न बैठना।

(घ) स्त्रियों के अंगोपांगों को रागदृष्टि से न देखना।

(ङ) स्त्री-पुरुषों के कामुकता पूर्ण शब्द न सुनना।

(च) अपने गृहस्थावस्था के पूर्व-सेवित भोगमय जीवन को भुला देना और ऐसा अनुभव करना कि मानो साधु के रूप में मेरा नया जन्म हुआ है।

(छ) सरस पौष्टिक विकारवर्धक राजस और तामस आहार न करना।

(ज) मर्यादा से अधिक आहार नहीं करना। अधिक-से अधिक बत्तीस छोटे कौर (ग्रास) भोजन करना।

(झ) स्नान मंजन शृंगार आदि करके आकर्षक रूप न बनाना।

५ अपरिग्रह महाव्रत—साधु परिग्रह मात्र का त्यागी होता है, फिर भले ही वह घर हो, खेत हो, धन धान्य हो, या द्विपद चतुष्पद हो अथवा अन्य भी कोई पदार्थ हो। वह सब के लिए मन-वचन-काय से समस्त परिग्रह को छोड़ देता है। पूर्ण रूपेण अनासक्त अपरिग्रही और सब प्रकार के ममत्व से रहित होकर विचरण करता है। साधुधर्म का पालन करने के लिए उसे जिन उपकरणों की अनिवार्य आवश्यकता होती है उनके प्रति भी उसे ममत्व नहीं होता।

यद्यपि मूर्छा को परिग्रह कहा गया है, तथापि बाह्य पदार्थों के त्याग से अनासक्ति का विकास होता है, अतएव बाह्य पदार्थों का त्याग भी आवश्यक माना गया है।

जैन साधु किसी गाड़ी अथवा वाहन की सवारी नहीं करता। वह नगर गाँव, . . विहार द्वारा भ्रमण करके सब जीवों को

आत्म-साधक बनाने के प्रयत्न में संलग्न रहता है। सर्दी-गर्मी भूख-प्यास, वर्षा धूप की भी परवाह न करके वह सतत ध्यान, तप तथा प्राणियों के उपकार के लिये प्रयत्क बना रहता है। सब प्रकार के परिषह और उपसर्गों को सहर्ष सहन करते हुए भी अपने जीवनलक्ष्य का त्याग नहीं करता। किसी सूक्ष्म-से-सूक्ष्म प्राणी का भी हिंसा उससे न हो जाय इसके लिये वह सदा सावधान रहता है और इस दोष से बचने के लिये वह अपने पास सदा 'रजोहरण'[1] रखता है तथा सचेत कच्चा पक्का अथवा दोष वाला ऐसा वनस्पति का आहार भी कभी ग्रहण नहीं करता। वस्तु के निकम्मे भाग को डालने से किसी एकेन्द्रिय जीव की भी हिंसा न हो जाय इसकी पूरी सावधानी रखकर स्थान की देखभाल कर तथा पूंज प्रमार्जन करके डालता है।

इस प्रकार निर्ग्रंथ श्रमण-जन साधु एकेन्द्रिय से लेकर पंचेन्द्रिय जीव की हिंसा से बचने के लिये सदा जागरूक रहता है।

---

१ एक ऊनादि नरम वस्तु का गुच्छा, जिससे स्थान साफ करने पर जीवों की हिंसा का बचाव होता है।

भगवान् महावीरस्वामी का त्यागमय जीवन

कुमार वर्धमान-महावीर स्वभाव से ही वैराग्यशील एवं एकान्त प्रिय थे। उनके माता-पिता तथा सारा परिवार भगवान् पार्श्वनाथ के अनुयायी थे। उन्होंने माता पिता के आग्रह से विवाह स्वीकार किया। इसके बाद वे २८ वर्ष के हुए और उनके माता पिता का देहान्त हो गया तब उनका मन दीक्षा (साधु होने) के लिये उत्कंठित हो उठा। परन्तु बड़े भाई नन्दिवर्धन तथा अन्य स्वजन वर्ग के अति आग्रह के कारण उन्होंने दो वर्षों के लिये और घर रहना स्वीकार कर लिया। किन्तु उनकी शर्त यह थी कि 'आज से मेरे निमित्त कुछ भी आरम्भ-समारम्भ न करना होगा।' अब वर्धमान गृहस्थ वेष में रहते हुए भी त्यागी जीवन बिताने लगे। अपने लिये बने हुए भोजन पेय तथा अन्य भोग सामग्री का बिल्कुल उपयोग (इस्तेमाल) न करते हुए वे साधारण भोजनादि से अपना निर्वाह करने लगे। ब्रह्मचारियों के लिये वर्जित स्नान-कुंकुम माल्य विलेपन और अन्य शृंगार साधनों का उपयोग पहले ही छोड़ दिया था। गृहस्थ होकर भी वे सादगी और संयम के आदर्श बने हुए शान्तिमय और त्यागमय जीवन बिताते थे।

भगवान् महावीर स्वामी ने तीस वर्ष की आयु में सुख-वैभव तथा गृहस्थाश्रम का त्याग कर एकाकी जिन दीक्षा ग्रहण की। आपने सब प्रकार के परिग्रह का सर्वथा त्याग किया। वस्त्र पात्र अलंकार आदि सब का त्याग कर साढ़े बारह वर्ष (१२ वर्ष, ६ महीने १५ दिन) तक घोर तप किया। इतने समय में आपने ३४९ दिन आहार लिया यह भी

को दूर कर केवलज्ञान–केवलदर्शन को प्राप्त किया। इस साधनावस्था में प्रभु महावीर ने कैसे-कैसे घोर परिषह और उपसर्ग सहन किये थे, उनका संक्षेप में यहां वर्णन कर देना इसलिए उचित है कि पाठक महाशय समझ सकेंगे कि भगवान महावीर का अपने देहादि पर ममत्व बिल्कुल नहीं था। वे तो महान तपस्वी त्यागी थे।

१ प्रथम उपसर्ग गवाले ने किया इसने भगवान महावीर को ध्यानावस्था में रस्सा से मारा। २ शूलपाणि यक्ष के मन्दिर में रहे तब शूलपाणि यक्ष ने अनेक उपसर्ग किये जैसे कि—अदृश्य अट्टहास करके डराया। हाथी का रूप कर के सूंड से उठाकर उछाला। सर्प का रूप बनाकर काटा। पिशाच का रूप बना कर डराया। मस्तक में कान में नाक में नेत्रों में दांतों में, पीठ में नखों में, सुकोमल अङ्गों में ऐसी वेदना की कि यदि कोई सामान्य पुरुष होता और उसके एक अंग में भी ऐसी पीड़ा होती तो उसकी तत्काल मृत्यु हो जाती। किन्तु प्रभु ने मेरु के समान निश्चल रहते हुए अदीन मन से सब कुछ सहन किया। ३ चण्डकौशिक सर्प ने डंक मारा परन्तु प्रभु ने शान्त चित्त से सहन किया। ४ सुदंष्ट्र नागकुमार देवता का उपसर्ग सहन किया। ५ प्रभु वन में कायोत्सर्ग मुद्रा में खड़े थे ग्वालों ने वन में आग जलायी और वहां से अन्यत्र चले गये। अग्नि शूल घासादि को जलाती हुई प्रभु के पैरों के नीचे आ गयी जिससे प्रभु के पैर जल गए फिर भी प्रभु ने अपना ध्यान नहीं छोड़ा और वैसे ही ध्यानमग्न खड़े रहे। ६ कटपूतना व्यन्तर देवी ने माघ मास के दिनों में सारी रात भगवान के शरीर पर अत्यन्त शीतल जल छींटा प्रभु विचलित नहीं हुए, अन्त में व्यन्तर देवी को ही हार माननी पड़ी। ७ संगम देवता ने एक रात्रि में प्रभु को बीस उपसर्ग किये—प्रभु पर धूलि की वर्षा की जिससे प्रभु के आंख, नाक, कानादि के स्रोत बन्द होने से प्रभु का श्वासोश्वास रुक गया तो भी प्रभु ध्यान से विचलित नहीं हुए। वज्रमुखी चींटियाँ बनाकर प्रभु के शरीर को छलनी के समान छलनी किया। वज्र चोंच वाले डांस बनाकर प्रभु को बहुत पीड़ा दी। तीक्ष्ण चोंचवाली दीमक

भगवान महावीर को बौद्ध ग्रन्थों में 'निगण्ठ नायपुत्त' के नाम से सम्बोधित किया है। बौद्ध के 'सुत्त पिटक' नामक ग्रन्थ में निर्ग्रन्थ (जैन) के मत की काफी जानकारी मिलती है। इन्हीं के 'मज्झिम निकाय के चूल दुक्खक्खन्ध सुत्त' नामक ग्रन्थ में वर्णन है कि राजगृह में निग्रन्थ खड़े-खड़े तपश्चर्या करते थे। निगण्ठ नायपुत्त (महावीर) सर्वज्ञ-सर्वदर्शी थे। चलते हुए खड़े रहते हुए सोते हुए या जागते हुए, हर स्थिति में उनको ज्ञानदृष्टि कायम रहती थी।

भगवान् महावीर का आचार—

भगवान महावीर पाँच महाव्रतधारी तथा रात्रिभोजन के सर्वथा त्यागी थे। इन व्रतों का स्वरूप जैन श्रमण के आचार में कर आये हैं।

भगवान महावीर दीक्षा (संन्यास) लेने के बाद एक वर्ष तक मात्र एक देवदूष्य वस्त्र सहित रहे तत्पश्चात् सर्वथा नग्न रहते थे। हाथों की हथेलियों में भिक्षा ग्रहण करते थे। उनके लिये तैयार किये हुए अन्नादि आहार को वे स्वीकार नहीं करते थे और न ही किसी के निमन्त्रण को स्वीकार करते थे। मत्स्य माँस मदिरा मादक पदार्थ कन्द मूल आदि अभक्ष्य वस्तुओं को कदापि ग्रहण नहीं करते थे। प्रायः तपस्या तथा ध्यान में ही रहते थे। छः छः मास तक निर्जल उपवास (सब प्रकार की खाने पीने की वस्तुओं का त्याग) करते थे। दाढ़ी मूछ के बाल उखाड़ कर केश लोच करते थे। स्नानादि के सर्वथा त्यागी थे। छोटे-से-छोटा तथा बड़े-से-बड़ा किसी भी प्राणी की हिंसा न हो जाय इसके लिए वे बहुत सतर्कता पूर्वक सावधानी रखते थे। वे बड़ी सावधानी से चलते फिरते, उठते-बैठते थे। पानी की बूंदों पर भी तीव्र दया रहती थी। सूक्ष्म-से-सूक्ष्म जीव का भी नाश न हो जाय इसके लिए बहुत सावधानी रखते थे। भयावन जंगलों अटवियों आदि निर्जन जगहों में ध्यानारूढ़ रहते थे। वे स्थान इतने भयंकर होते थे कि यदि कोई सांसारिक मनुष्य वहाँ प्रवेश करता तो उसके रोंगटे खड़े हो जाते। जाड़ों में हिमपात

[५]

श्रमण भगवान् महावीर का तत्त्वज्ञान

किसी भी महापुरुष के जीवन का वास्तविक रहस्य जानने के लिये दो बातों की आवश्यकता होती है —(१) उस महापुरुष के जीवन की बाह्य घटनाएँ और (२) उनके द्वारा प्रचारित उपदेश। बाह्य घटनाओं से आन्तरिक जीवन का यथावत् परिज्ञान नहीं हो सकता। आन्तरिक जीवन को समझने के लिये उनके विचार ही अभ्रान्त कसौटी का काम दे सकते हैं। उपदेश उपदेष्टा के मानस का सार उसकी आभ्यन्तरिक भावनाओं का प्रत्यक्ष चित्रण है। तात्पर्य यह है कि उपदेष्टा की जैसी मनोवृत्ति होगी वैसा ही उसका उपदेश होगा। यह कसौटी प्रत्येक मनुष्य की महत्ता का माप करने के लिये उपयोगी हो सकती है क्योंकि विचारों का मनुष्य के आचार पर बड़ा प्रभाव पड़ता है। इसलिये एक को समझे बिना दूसरे को नहीं समझा जा सकता। श्रमण भगवान् महावीर के उपदेशों को हम दो विभागों में विभक्त कर सकते हैं। (१) विचार यानी तत्त्वज्ञान (२) आचार यानी आचरण अथवा चरित्र। यहाँ पर उनके विचार अथवा तत्त्वज्ञान का संक्षिप्त परिचय देंगे। केवलज्ञान पाने के बाद भगवान ने कहा—(१) यह लोक है इस विश्व में जीव और जड़ दो पदार्थ हैं इनके अतिरिक्त और तीसरी मौलिक वस्तु है ही नहीं। इसलिये हम यह कह सकते हैं कि जीव और जड़ के समूह का ही लोक कहते हैं। (२) प्रत्येक पदार्थ मूल द्रव्य की अपेक्षा से नित्य है और पर्याय की अपेक्षा से अनित्य अन्तवान है। (३) लोकालोक अनन्त है। (४) जीव और शरीर भिन्न हैं। जीव शरीर नहीं शरीर जीव नहीं। (५) जीवात्मा अनादि काल से कर्म से बद्ध है इसलिये यह पुन: पुन: जन्म धारण करती है। (६) जीवात्मा

कम रहित होकर मुक्त होती है। (७) जीव और कर्म का सम्बन्ध अनादि है तो भी अहिंसा, संयम तथा तपश्चरण द्वारा कर्मों को सर्वथा अलग किया जा सकता है। (८) आत्मा स्वतन्त्र तत्त्व है तथा अरूपी व स्वदेहप्रमाण है। (९) जीवात्मा ज्ञान-दर्शन मय स्वतन्त्र पदार्थ है। (१०) विश्व छ द्रव्यात्मक है—जीवास्तिकाय पुद्गलास्तिकाय धर्मास्तिकाय अधर्मास्ति काय आकाशास्तिकाय और काल। इनमें जीव चेतन्य है बाकी पाँच द्रव्य जड़ है पुद्गल रूपी है, बाकी पाँच द्रव्य अरूपी हैं। (११) विश्व के सब पदार्थ उत्पाद-व्यय ध्रौव्यात्मक नित्यानित्य हैं। (१२) जीव कर्म करने और भोगने में स्वतन्त्र है तथा अपने पुरुषार्थ बल से कर्मों का सर्वथा क्षय करके सिद्ध और मुक्त होकर शाश्वत आनन्द का उपभोक्ता बनता है। (१३) अहिंसा सत्य अचौर्य ब्रह्मचर्य अपरिग्रह आदि की अभिवृद्धि एवं अभिव्यक्ति से आत्मा अपनी स्वाभाविकता के समीप पहुंचते हुए स्वयं धर्म मय बन जाता है। (१४) सम्यग्दर्शन सम्यग्ज्ञान तथा सम्यक् चारित्र इन तीनों की परिपूर्णता से जीवात्मा मुक्ति प्राप्त करता है। (१५) मुक्तावस्था में आत्मा का स्वतन्त्र अस्तित्व रहता है। (१६) अपने भाग्य का निर्माता जीव स्वयं है। (१७) जीवात्मा मुक्त होने के बाद पुन अवतार नहीं लेता। (१८) तत्त्व नव है—जीव अजीव पुण्य पाप, आस्रव, संवर, बन्ध निर्जरा और मोक्ष। (१९) मानव शरीर से जीवात्मा सब कर्मों को क्षय करके ईश्वर बनती है अर्थात् मुक्ति प्राप्त करना ही ईश्वरत्व की प्राप्ति है। (२०) जीवात्मा राग-द्वेष (मोहनीय कर्म) के क्षय से वीतरागता को प्राप्त करता है। वह ज्ञानावरणीय आदि चार घाती कर्मों को क्षय करके केवलज्ञान केवलदर्शन प्राप्त कर सर्वज्ञ सर्वदर्शी बनता है। (२१) ईश्वर जगत् का कर्त्ता नहीं है जगत् तो अनादि काल से प्रवाह रूप से अनादि और अनन्त है। इस प्रकार लोक जीव अजीव, ईश्वर आदि के स्वरूप का विस्तार पूर्वक विवेचन कर अपनी सर्वज्ञता का परिचय दिया है।

सारांश यह है कि प्रभु महावीर के परम पवित्र प्रवचन (उपदेश)

श्रमण भगवान् महावीर का तत्त्

किसी भी महापुरुष के जीवन का वास्तविक रहस्य
ा बातों की आवश्यकता होती है —(१) उस महापुरु
ाह्य घटनाएँ और (२) उनके द्वारा प्रचारित उपदेश। बा
आन्तरिक जीवन का यथावत परिज्ञान नहीं हो सकता।
को समझने के लिये उनके विचार ही अभ्रान्त कसौटी
हैं। उपदेश उपदेष्टा के मानस का सार उनका आभ्यन्तरि
का प्रत्यक्ष चित्रण है। तात्पर्य यह है कि उपदेष्टा की जैसी
वैसा ही उसका उपदेश होगा। यह कसौटी प्रत्येक मनुष्य
माप करने के लिये उपयोगी हो सकती है क्योंकि विचारों
आचार पर बड़ा प्रभाव पड़ता है। इसलिये एक को समझ
को नहीं समझा जा सकता। श्रमण भगवान महावीर के उ
दो विभागों में विभक्त कर सकते हैं। (१) विचार यानी
आचार यानी आचरण अथवा चरित्र। यहाँ पर उनके
तत्त्वज्ञान का संक्षिप्त परिचय देंगे। केवलज्ञान पाने के
कहा—(१) यह लोक है इस विश्व में जीव और जड़ दो
अतिरिक्त और तीसरी मौलिक वस्तु है ही नहीं। इसलिये
है कि जीव और जड़ के समूह को ही लोक कहते हैं। (२)
मूल द्रव्य की अपेक्षा से नित्य है और पर्याय की अपेक्षा से अ
है। (३) लोकालोक अनन्त है। (४) जीव और शरीर
शरीर नहीं शरीर जीव नहीं। (५) जीवात्मा अनादि
बद्ध है इसलिये यह पुनः पुनः जन्म धारण करती है। (

कर्म रहित होकर मुक्त होती है। (७) जीव और कर्म का सम्बन्ध अनादि है तो भी अहिंसा संयम तथा तपश्चरण द्वारा कर्मों का सर्वथा अन्त किया जा सकता है। (८) आत्मा स्वतन्त्र तत्त्व है तथा अल्पा व स्वदेहप्रमाण है। (९) जीवात्मा ज्ञान-दर्शन मय स्वतन्त्र पदार्थ है। (१०) विश्व छ द्रव्यात्मक है—जीवास्तिकाय पुद्गलास्तिकाय धर्मास्तिकाय अधर्मास्ति काय आकाशास्तिकाय और काल। इनमें जीव चेतन है बाकी पाँच द्रव्य जड हैं पुद्गल रूपी है, बाकी पाँच द्रव्य अरूपी हैं। (११) विश्व के सब पदार्थ उत्पाद-व्यय ध्रौव्यात्मक नित्यानित्य हैं। (१२) जीव कर्म करने और भोगने में स्वतन्त्र है तथा अपने पुरुषार्थ से ही कर्मों का सर्वथा क्षय करके सिद्ध और मुक्त होकर शाश्वत आनन्द का उपभोक्ता बनता है। (१३) अहिंसा सत्य अचौर्य ब्रह्मचर्य अपरिग्रह आदि की अभिवृद्धि एवं अभिव्यक्ति से आत्मा अपनी स्वाभाविकता के समीप पहुँचने द्वारा स्वयं धर्म मय बन जाता है। (१४) सम्यग्दर्शन सम्यग्ज्ञान तथा सम्यक्चारित्र इन तीनों की परिपूर्णता से जीवात्मा मुक्ति प्राप्त करता है। (१५) मुक्ता वस्था में आत्मा का स्वतन्त्र अस्तित्व रहता है। (१६) अपने भाग्य का निर्माता जीव स्वयं है। (१७) जीवात्मा मुक्त होने के बाद पुनः अवतार नहीं लेती। (१८) तत्त्व नव है—जीव अजीव पुण्य, पाप, आस्रव संवर बन्ध निर्जरा और मोक्ष। (१९) मानव शरीर में जीवात्मा सब कर्मों का क्षय करके ईश्वर बनता है अर्थात् मुक्ति प्राप्त करना ही ईश्वरत्व की प्राप्ति है। (२०) जीवात्मा राग-द्वेष (मोहनीय कर्म) के क्षय से वीतरागता को प्राप्त करती है। ज्ञानावरणीय आदि चार घाती कर्मों का क्षय करके केवलज्ञान केवलदर्शन प्राप्त कर सकल सर्वज्ञ बनता है। (२१) ईश्वर जगत् का कर्त्ता नहीं है, जगत् तो अनादि काल से प्रवाह रूप से अनादि और अनन्त है। इस प्रकार लोक जीव अजीव ईश्वर आदि के स्वरूप का विस्तार पूर्वक विवेचन कर अपनी सर्वज्ञता का परिचय दिया है।

साराश यह है कि प्रभु महावीर के परम पवित्र प्रवचन (उपदेश)

का आधार मन कल्पना और अनुमान की भूमिका पर नहीं था, परन्तु उनके प्रवचन में केवलज्ञान द्वारा हाथ में रखे हुए आंवले के समान समस्त विश्व के स्वरूप को प्रत्यक्ष जानकर लोकालोक के मूल तत्त्व भूत द्रव्य गुण-पर्याय के त्रिकालवर्ती भावों का दिग्दर्शन था। अथवा आधुनिक परिभाषा में कहा जाए तो उसमें विराट विश्व या अखिल ब्रह्माण्ड (Whole Cosmos) की विधि विहित घटनाएं (Natural phenomena), उनके द्वारा होती हुई व्यवस्था (Organisation) विधि का विधान और नियम (Law and order) का प्रतिपादन तथा प्रकाशन था।

---

[६]

श्रमण भगवान् महावीर तथा अहिंसा

साढ़े बारह वर्ष की कठिन तपस्या और घोर योगचर्या के पश्चात् भगवान् महावीर-वर्धमान को केवलज्ञान—केवलदर्शन की प्राप्ति हुई। वे सर्वज्ञ-सर्वदर्शी जीवनमुक्त परमात्मा हुए। अब आत्मा की प्रकृति का पूर्ण विकास उनके महान व्यक्तित्व में हुआ। केवलज्ञान की प्राप्ति से भगवान महावीर सारे विश्व के त्रिकालवर्ती समस्त पदार्थों को हाथ की अंगुलियों के समान प्रत्यक्ष जानने लगे। उस समय वे अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन, अनन्त सुख और अनन्त वीर्य के जीवित पुञ्ज थे। जैनागमों में सर्वत्र भगवान महावीर को सर्वज्ञ सर्वदर्शी माना है। ज्ञातपुत्र महावीर के समकालीन बौद्धों के पिटकों में भी भगवान महावीर को सर्वज्ञ और सर्वदर्शी स्वीकार किया है। बौद्धों के 'अंगुत्तरनिकाय' नामक ग्रन्थ में लिखा है कि ज्ञातपुत्र महावीर सर्वज्ञाता और सर्वदर्शी थे। उनकी सर्वज्ञता अनन्त थी। वे चलते-फिरते सोते-जागते हर समय सर्वज्ञ थे[1]। 'मज्झिम निकाय' में उल्लेख है कि ज्ञातपुत्र महावीर सर्वज्ञ हैं।[2] वे जानते हैं कि किस किसने किस प्रकार का पाप किया है और किसने नहीं किया है।

भगवान् महावीर अहिंसा तत्त्व की साधना करना चाहते थे। उसके लिये उन्होंने संयम और तप ये दो साधन पसन्द किये। उन्होंने यह विचार किया कि मनुष्य अपनी सुखप्राप्ति की लालसा से प्रेरित होकर ही अपने से निर्बल प्राणियों के जीवन की आहुति देता है और

---

१ अ० नि० १ २२०
२ म० नि० २ २१४ २८ ।

इस प्रकार सुख की मिथ्या भावना और सकुचित वृत्ति के कारण व्यक्तियो और समूहों म द्वेष बढ़ाता है शत्रुता की नीव डालता है और इसके फल स्वरूप पीडित एव पददलित जीव बलवान होकर बदला लेने का निश्चय तथा प्रयत्न करते हैं और बदला लेने भी हैं। इस तरह हिंसा और प्रतिहिंसा का एसा विषचक्र तयार हो जाता है कि लोग ससार के सुख को स्वय ही नरक बना देते हैं। हिंसा के इस भयानक स्वरूप के विचार से महावीर ने अहिंसातत्त्व मे ही समस्त धर्मों का समस्त कर्त्तव्यो का और प्राणिमात्र की शान्ति का मूल देखा। यह विचार कर उन्होने करभाव को तथा मानसिक और मानसिक दोषो स होने वाली हिंसा को रोकने के लिये तप और सयम का अवलम्बन लिया।

सयम का सम्बन्ध मुख्यत मन और वचन के साथ होने के कारण उन्होंने ध्यान और मौन का स्वीकार किया। भगवान महावीर के साधक जीवन में सयम और तप यही दो बात मुख्य हैं और उन्हें सिद्ध करने के लिये उन्होने साढ़े बारह वर्षों तक जो प्रयत्न किया और उसमें जिस तत्परता और अप्रमाद का परिचय दिया वसा आज तक की तपस्या के इतिहास में किसी व्यक्ति ने दिया हो वह दिखलाई नहीं देता। गौतम बुद्ध आदि ने महावीर के तप को देह-दुःख और देहदमन कह कर उसकी अवहेलना की है। परन्तु यदि वे सत्य तथा न्याय के लिये भगवान महावीर के जीवन पर तटस्थता से विचार करते तो उन्हें यह मालूम हुए बिना कदापि न रहता कि भगवान् महावीर का तप शुष्क देहदमन नहीं था। वे सयम और तप दोनो पर समान रूप से जोर देते थे। वे जानते थे कि यदि तप के अभाव से सहनशीलता कम हुई तो दूसरों की सुखसुविधा की आहुति देकर अपनी सुखसुविधा बढ़ाने की लालसा बढ़गी और उसका फल यह होगा कि सयम न रह पायगा। इसी प्रकार सयम के अभाव म कोरा तप भी पराधीन प्राणी पर अनिच्छा पूवक आ पड़ देह कष्ट की तरह निरर्थक है।

ज्यो-ज्यो सयम और तप की उत्कटता स महावीर अहिंसातत्त्व के

अधिकाधिक निकट पहुँचते गए त्यों-त्यों उनकी गम्भीर शान्ति बढ़ने लगी। जिसके प्रभाव से उन्होंने राग-द्वेष को सर्वथा क्षय कर केवलज्ञान की प्राप्ति कर सर्वज्ञत्व प्राप्त किया।

भगवान महावीर के समकालीन अनेक धर्मप्रवर्तक थे उनमें से १ तथागत गौतम बुद्ध, २ पूरणकस्सप ३ संजय वेलट्ठिपुत्त ४ पकुध कच्चायन ५ अजितकेसकम्बलि और ६ मक्खली गोशालक के नाम मिलते हैं। (भगवान् महावीर इनके अलावा थे)।

उस समय के सब धर्म प्रवर्तकों से भगवान महावीर के तप-त्याग संयम तथा अहिंसा की जनता के मानस पर बहुत गहरी छाप पड़ी थी क्योंकि उन्होंने राग-द्वेष आदि मलिन वृत्तियों पर पूर्ण विजय प्राप्त की थी जिससे वे वीतराग बने थे। इस साध्य की सिद्धि जिस अहिंसा, जिस तप या जिस त्याग से न हो सके वह अहिंसा तप तथा त्याग कैसा ही क्यों न हो पर आध्यात्मिक दृष्टि से अनुपयोगी है। अतः प्रभु महावीर ने राग-द्वेष की विजय पर ही मुख्यतया भार दिया था और अपने आचरण में आत्मसात कर उन्होंने अपनी काया वाणी तथा मन पर काबू पाया था अर्थात् अपने दैहिक और मानसिक सब प्रकार के ममत्व का त्याग कर राग-द्वेष का सर्वथा नाश कर समदृष्टि बने थे। इसी दृष्टि के कारण भगवान् महावीर द्वारा उपदिष्ट जैन धर्म का बाह्य और अभ्यन्तर स्थूल-सूक्ष्म सब प्रकार का आचार साम्यदृष्टिमूलक अहिंसा की भित्ति पर ही निर्मित हुआ है। जिस आचार के द्वारा अहिंसा की रक्षा और पुष्टि न हो सके ऐसे किसी भी आचार को जैन परम्परा मान्य नहीं रखती।

यद्यपि अन्य सब धार्मिक परम्पराओं ने अहिंसा तत्त्व पर न्यूनाधिक भार दिया है पर जैन परम्परा ने इस तत्त्व पर जितना भार दिया है और उसे जितना व्यापक बनाया है उतना भार और उतनी व्यापकता अन्य धर्म परम्परा में देखी नहीं जाती। जैनधर्म ने मनुष्य पशु पक्षी कीट पतंग और [illegible] जन्तु पार्थिव जलीय आदि सूक्ष्मातिसूक्ष्म जन्तुओं [illegible] य की भावना द्वारा निवृत्त होने के लिये

अहिंसा के इस उपर्युक्त विवेचन से भगवान् महावीर के आदर्श अहिंसामय जीवन का और उनके द्वारा प्रदत्त अहिंसा के उपदेश का पूरा-पूरा परिचय मिल जाता है।

केवल भगवान् महावीर ने ही नहीं परन्तु सब जैन तीर्थंकरों ने प्राणिवध एवं मांसाहार का विरोध अपने अपने समय में किया था।

एक समय था जब कि केवल क्षत्रियों में ही नहीं पर सभी वर्गों में मांस खाने की प्रायः प्रथा होगी। उस युग में यदुवंशीय नेमिकुमार ने एक अद्भुत कदम उठाया। उन्होंने अपनी शादी पर भोजन के वास्ते कतल किये जाने वाले पशु-पक्षियों की आर्त मूक वाणी से सहसा पिघल कर निश्चय किया कि वे ऐसी शादी न करेंगे जिसमें पशु पक्षियों का वध होता है। उस गंभीर निश्चय के साथ वे सबकी सुनी अनसुनी करके बारात से शीघ्र वापिस लौट आये। द्वारका से साथ गिरनार पर्वत पर जाकर उन्होंने तपस्या की। भर जवानी में उन्होंने सांसारिक सुखभोगों की परवाह न करते हुए राजपुत्री राजीमती को त्यागकर और ध्यान-तपस्या का मार्ग अपना कर चिरप्रचलित पशु-पक्षीवध की प्रथा पर इतना सख्त प्रहार किया कि गुजरात भर में तथा उसके प्रभाव वाले दूसरे प्रान्तों में भी यह प्रथा सदा के लिये समाप्त हो गई।

भगवान् पार्श्वनाथ ने भी जीवहिंसा के विरोध करने के कारण महान् उपसर्ग सहे। दुर्वासा जैसे सहज कोपी कमठ नामक तापस तथा उसके अनुयायियों की नाराजगी का खतरा उठा कर भी एक जलते सांप को गीली लकड़ी से बचाने का प्रयत्न किया।

दीर्घतपस्वी महावीर ने भी स्थान-स्थान पर तथा समय-समय पर अपनी अहिंसा वृत्ति का अपने जीवन में अनेक बार परिचय दिया। १ जब जंगल में वे ध्यानस्थ खड़े थे एक प्रचण्ड विषधर (चण्डकौशिक) ने उन्हें डस लिया उस समय वे न केवल ध्यान में अचल ही रहे परन्तु उन्होंने मैत्री भावना का उस विषधर पर प्रयोग किया जिससे वह सदा के लिये वर-

भगवान् महावीर के मांसाहार सम्बन्धी विचार

१—करुणा के प्रत्यक्ष अवतार भगवान महावीर ने मांसाहार को दुर्व्यसनों में माना है और इसे नरक का कारण भी बतलाया है। जैनागम स्थानांग सूत्र के चौथे स्थान में भगवान महावीर फरमाते हैं कि चार कारण से प्राणी नरक में जाता है—(१) महारम्भ से (२) महापरिग्रह रखने से, (३) पंचेन्द्रिय जीवों का वध करने से (४) मांस भक्षण करने से। पंचमांग भगवती सूत्र, उववाई सूत्र तथा स्थानांग सूत्र में भी इसी प्रकार का वर्णन है—

वह सूत्र पाठ इस प्रकार है —

'चउहिं ठाणेहिं जीवा णेरतियत्ताए कम्मं पकरेंति तं जहा —
महारंभताते, महापरिग्गहयाते पंचिंदियवहेणं कुणिमाहारेणं ॥

(ठाणांग सूत्र ठा० ४)

२—जैन साहित्य में घातक (कसाई हिंसक) किन्हें कहना चाहिए उसका वर्णन इस प्रकार मिलता है —

अनुमन्ता विशसिता, निहन्ता क्रय विक्रयी।
संस्कर्ता, चोपहर्ता च खादकाश्चेति घातका ॥

अर्थात् १—मारने का सलाह देने वाला २—प्राणियों के शरीर को काटने वाला, ३—मारने वाला ४—मांस मोल लेने वाला, ५—मांस

सेवन वाला ६—माँस पकाने वाला ७—माँस परोसने वाला ८—तथा माँस खाने वाला ये सब घातक (कसाई-हिंसक) हैं।

३—भगवान् महावीर ने मांसाहार मदिरा और अभक्ष्य पदार्थों का आहार कितना पापमूलक बताया है इसके विषय में जनागम सूत्रकृतांग में वर्णन है —

'जो लोग मदिरा मांस आदि अभक्ष्य पदार्थों का आहार करते हैं वे चाहे मल मल कर स्नान करें चाहे नमक आदि स्वादु पदार्थों का त्याग कर दें उन्हें कभी मोक्ष की प्राप्ति नहीं हो सकती वे तो अनर्थ के करने वाले हैं। सूत्र पाठ यह है :—

पाओसिणाणादिसु णत्थि मोक्खो,
खारस्स लोणस्स अणासएण।
ते मज्जमंस लसुणं च भोच्चा
अनत्थ वासं परिकप्पयंति ॥१३॥

(सूत्रकृतांग श्रुतस्कन्ध १ अध्ययन ७)

४—शराबी और माँसाहारी को कितनी घोर यातनाएं नरक गति में भोगनी पड़ती हैं इसका भी विस्तृत वर्णन जनागमों में पाया जाता है।

५—आचारांग सूत्र में भगवान महावीर फरमाते हैं कि जैन भिक्षु को यदि कहीं माँस मछली अथवा उसकी खाल काँटे आदि होने का पता लग जावे तो वह वहाँ न जाए। किसी प्राणी किसी भूत किसी जीव किसी सत्व को न मारना चाहिए न सताना चाहिए, न कष्ट पहुँचाना चाहिए यही धर्म शुद्ध है।

६—सूत्रकृतांग में फरमाते हैं कि जो साधु मांस-मदिरा का त्याग करे। जो माँस मदिरा का सेवन करते हैं वे अज्ञानता से पाप करते हैं उनका मन अपवित्र है और वचन भी झूठा है (सूत्रकृतांग अ० २)।

७—उत्तराध्ययन सूत्र में मदिरा पान माँस भक्षण तथा दुराचरण आदि से नारकी की आयु का बंध होता है। हिंसक यज्ञ करने वाले ... वाले कपटी बगलखोर शठ तथा ... मशी जो

होते हैं वे समझते हैं कि यही जीवन का आनन्द है, परन्तु ध्यान में रखना चाहिए कि जिसे माँस अथवा माँस का टुकड़ा प्रिय है वह भी उसी प्रकार पकाया व खाया जाएगा।

८—अनुयोगद्वार सूत्र में —जिस प्रकार मुझे दुःख अच्छा नहीं लगता उसी प्रकार किसी जीव को भी दुःख अच्छा नहीं लगता। यह जान कर जो न स्वयं किसी को मारता है और न मारने की प्रेरणा ही करता है सभी के प्रति समभाव रखता है वही श्रमण है।

९—दशवैकालिक सूत्र में—शराब छोड़ दे माँस छोड़ दे विकृति (रस-पुष्ट) भोजन का त्याग कर। बार-बार कायोत्सर्ग (ध्यान) तथा स्वाध्याय योग में लीन हो जा।

१०—ज्ञानी होने का सार यह है कि वह किसी भी प्राणी की हिंसा न करे। अहिंसा का सिद्धान्त ही सर्वोपरि है—मात्र इतना ही विज्ञान है। सभी जीव जीना चाहते हैं मरना कोई भी नहीं चाहता। इसीलिए निग्रंथ (जैन मुनि) घोर प्राणिवध का सर्वथा त्याग करे।

११—जो औषध में माँस खिलावे या सम्मति दे वह नरक में जाता है।

१२—माँस दुर्गन्ध वाला है, बीभत्स है शरीर के मलों से बना हुआ है अपवित्र है और नरक में ले जाने वाला है। अतः त्याज्य है।

१३—माँस में क्षण भर में ही अनन्त सूक्ष्म कीटाणुओं का जन्म और विनाश होता है। यह नरक के मार्ग में ले जाने वाला भोजन है। कौन बुद्धिमान ऐसे माँस को खा सकता है?

१४—माँस कच्चा हो या पकाया हुआ उसके प्रत्येक टुकड़े में निर्बाध रूप से निगोद के जीव उत्पन्न होते हैं।

१५—आचार्य रत्नाकर सूरि—संबोध सप्ततिका में स्पष्ट लिखते हैं —कि आगम में माँस मदिरा आदि को जीवों का उत्पत्ति स्थान बतलाया है —

'आमासु य पक्कासु य विपच्चमाणासु मंसपेसीसु।
आयंतियमुववाओ भणिओ उ निगोअजीवाण ॥ १ ॥

मज्जे महुम्मि मंसम्मि णवणीयम्मि चउत्थए
उप्पज्जंति अणंता तव्वण्णा तत्थ जंतुणो ॥ २ ॥
(श्लोक ६६, ६७)

अर्थात्—'कच्चे पक्के और अग्नि में पकाये हुए मांस के प्रत्येक अवस्था में अनन्त निगोद जीवों की उत्पत्ति होती रहती है। मदिरा मधु मांस और मक्खन में मद्य मधु मांस और मक्खन के रंग के अनन्त जीवों की उत्पत्ति होती है। इस प्रकार मांस आदि खाने से अनन्त जीवों का नाश होता है अतएव इनका सेवन करना दोषपूर्ण है।

१६—आज के विज्ञान ने भी इस बात को स्पष्ट सिद्ध कर दिया है कि मांस अनगिनत जीव कीटाणुओं का पुंज है और उसमें प्रतिक्षण कृमि समान जीव उत्पन्न होते रहते हैं।

१७—भगवान महावीर आचारांग सूत्र में फरमाते हैं —

से बेमि—जे अईया जे य पडुप्पन्ना जे य आगमिस्सा अरहंता भगवंतो ते सव्वे एवमाइक्खंति एवं भासंति एवं पण्णविंति, एवं परूविंति सव्वे पाणा, सव्वे भूया सव्वे जीवा सव्वे सत्ता न हंतव्वा न अज्जावेयव्वा, न परिघित्तव्वा, न परियावेयव्वा न उद्दवेयव्वा। एस धम्मे सुद्धे णिइए सासए समिच्च लोयं खेयण्णेहिं पवेइए तं जहा—उट्ठिएसु वा अणुट्ठिएसु वा, उवट्ठिएसु वा अणुवट्ठिएसु वा, उवरयदंडेसु वा, अणुवरयदंडेसु वा सोवहिएसु वा अणोवहिएसु वा संजोगएसु वा, असंजोगएसु वा, तच्चं चेयं, तहा चेयं अस्सिं चेयं पवुच्चई। (आचारांग)

भावार्थ—मैं (भगवान महावीर) कहता हूँ कि भूतकाल में जो तीर्थंकर हो चुके हैं अब जो विद्यमान हैं और जो अनागत काल में होंगे वे सब इस तरह कहते हैं बोलते हैं दूसरों को समझाते हैं तथा प्ररूपणा करते हैं—किसी भी प्राण भूत जीव और सत्वों को नहीं मारना चाहिए। उनपर शासन (दबाव) नहीं डालना चाहिए उन्हें दास की तरह अधिकार में नहीं रखना चाहिए। उन्हें किसी प्रकार का सताप नहीं देना चाहिए। तथा उनके प्राणों को नहीं लूटना चाहिए। यही धर्म शुद्ध है नित्य है,

शाश्वत है। संसार के दुःखों को जानने वाले अरिहंत भगवंतों ने संयम में उद्यत और अनुद्यत उपस्थित और अनुपस्थित, मुनियों और गृहस्थों रागियों और त्यागियों, भोगियों और योगियों को समभाव में यह उपदेश दिया है। यही एक सत्य है, यही तथ्यरूप है और ऐसा धर्म इस निर्ग्रन्थ प्रवचन में ही कहा है।

तीर्थंकर भगवन्तों ने मांस के समान अण्डे खाने का भी निषेध किया है क्योंकि यह त्रस जीव का कलेवर है। जिस प्रकार मांस मछली मदिरा आदि अभक्ष्य होने से जैनागमों में उनके भक्षण का सर्वथा निषेध है उसी प्रकार अण्डा भी सचित (त्रस जीव वाला) होने से अभक्ष्य है। जैनागमों में कहा है —

से बेमि, संति मे तसा पाणा स जहा-अंडया पोतया, जराउया रसया संसेयया संमुच्छिमा उब्भियया उववाइया एस संसारे त्ति पवुच्चति मन्दस्स अविजाणओ।

(आ० अ० १ उ० ६)

भगवान फरमाते हैं कि इस संसार में आठ प्रकार के त्रस जीव होते हैं जैसे कि —१अण्डज, २पोतज ३जरायुज ४रसज ५संस्वेदज ६समुच्छिम ७उदभिज्जक और ८औपपातिक।

इस पाठ से स्पष्ट है कि कुछ त्रस जीव अण्डे से उत्पन्न होते हैं इसलिए अण्डा भी सजीव सिद्ध हो जाता है।

आज के विज्ञान की यह मान्यता है कि अण्डा गर्भ से निकलते समय निर्जीव होता है। मादा जब ऊपर बैठकर सेती है तो गर्मी के द्वारा उसमें जीव उत्पन्न हो जाता है। विज्ञान की यह युक्ति उचित प्रतीत नहीं होती। मादा के अण्डे पर बैठने से और गर्मी पहुंचाने से यदि अण्डे में जीव उत्पन्न होता है तो एक आटे की गोली अण्डे जैसी बनाकर मादा के नीचे रखने से खूब गर्मी पहुंचाने पर उसमें से बच्चा निकलना चाहिये क्योंकि यदि सेते समय गर्मी पहुंचाने से ही अण्डे में से बच्चा निकलता

है तो आटे की गोली में से भी अवश्य निकलना चाहिए परन्तु ऐसा नहीं होता क्योंकि आटे की गोली में पञ्चेन्द्रिय जीव नहीं होता।

अण्डा गर्भ में बनता है और जानवर भी गर्भ में पैदा होता है। बाहर आकर केवल परिपक्व होता है और पूर्ण होता है। यहाँ यह बात समझ लेनी चाहिए कि अण्डे भी दो प्रकार के होते हैं १गर्भज २सम्मूर्च्छिम। मुर्गी आदि के अण्डे गर्भ में उत्पन्न हैं इसलिए अण्डे में निकलने वाले जीव को द्विज कहते हैं। द्विज का अर्थ है दो बार जन्म लेना। एक जन्म गर्भ में आकर अण्डे के रूप में उत्पन्न होता है दूसरा अण्डे के गर्भ से बाहर आने के पश्चात् उसमें से बच्चे के रूप में निकलना दूसरा जन्म है। इस प्रकार अण्डा सजीव सिद्ध होता है।

पाश्चात्य विद्वानों का मत है कि गर्भज अण्डा दो प्रकार का होता है (१) जिस अण्डे में से बच्चा बन कर निकलता है (२) जिस अण्डे में से बच्चा बन कर नहीं निकलता। अतः वे कहते हैं कि जिस अण्डे में से बच्चा बन कर निकलता है उसमें जीवनी शक्ति है और जिसमें से बच्चा बन कर नहीं निकलता उसमें जीवनी शक्ति नहीं है परन्तु उनकी यह धारणा भी ठीक प्रतीत नहीं होती। वास्तव में दोनों में जीवनी शक्ति है। जिस प्रकार वन्ध्या स्त्री में जनन क्रिया नहीं होती इसका अर्थ यह नहीं कि उसकी योनि निर्जीव है अर्थात् उसकी योनि सजीव होने पर भी उसमें जनन क्रिया का अभाव है और अवन्ध्या स्त्री में जनन शक्ति होने पर जनन क्रिया होती है वैसे ही अवन्ध्या अण्डों में से बच्चे निकलते हैं और वन्ध्या अण्डों में से बच्चे नहीं निकलते। अतः अण्डे आदि का भक्षण भी उचित नहीं है इसलिए भगवान महावीर आदि सभी तीर्थंकरों ने अण्डे को भी अभक्ष्य मान कर इसका प्रयोग उचित नहीं माना और इसीलिए जैन अहिंसक लोग आज भी अण्डे का प्रयोग नहीं करते।

जैनागम विपाक सूत्र के तीसरे अध्ययन 'अभग्नसेन' में वर्णन है कि एक बार श्रमण भगवान महावीर के मुख्य शिष्य इन्द्रभूति गौतम गणधर

भिक्षा के लिए निकले। उन्होंने मार्ग में किसी अपराधी को देखा जिसे राजपुरुषों ने घेरा हुआ था। उसे बुरी तरह पीटा जा रहा था। उसे उसी का मांस काट काट कर खिलाया जा रहा था। उस की दुर्दशा को देखकर इन्द्रभूति गौतम कर्म फल का विचार करने लगे और उनका हृदय करुणा से द्रवित होगया। वापिस लौट कर उन्होंने भगवान महावीर से पूछा भन्ते! जिस अपराधी का मैं राजपथ पर देखा है वह अपने पहले जन्म में कौन था? उसने अपने पिछले जन्म में क्या बुरे कर्म किये थे जिससे उसकी यह दुर्दशा हो रही है?

भगवान् बोले— गौतम! यह अपने पूर्व जन्म में अण्डों का व्यापारी था। स्वयं भी मांस-अण्डे आदि भक्षण करता था इसका नाम निह्लक था और अण्डों के व्यापार के कारण यह निह्लक अण्ड बनिये के नाम से प्रसिद्ध हो गया था। उसने इस काम के लिए नौकर रखे हुए थे जो मोरनी मुर्गी, कबूतरी आदि के अण्डे खरीद कर लाते और बाजार में जाकर बेचा करते थे। वह स्वयं भी अण्डों को भूनता तलता और खाता था। शराब पीकर नशे में चूर रहता था। भगवान बोले हे गौतम! यह इतना पापी था जिसके फलस्वरूप अपने जीवन के दिन पूरे कर वह तीसरी नरक में जाकर पैदा हुआ। वहाँ दारुण दुःख भोग कर यहां विजय चोर के घर जन्मा है। इस जन्म में भी अपने किये का फल भोग रहा है।

इन उपर्युक्त उद्धरणों से भगवान् महावीर के आदर्श अहिंसामय जीवन का और उनके द्वारा प्रदत्त अहिंसा के उपदेश का पूरा पूरा परिचय मिल जाता है।

इससे स्पष्ट है कि श्रमण भगवान महावीर ने अपने इन विचारों को स्वयं अपने आचरण में उतारा और फिर मानव समाज को प्राणी मात्र की अहिंसा का अपनी वाणी और करणी द्वारा प्रभावोत्पादक उपदेश दिया। इसी के परिणाम स्वरूप आज भी जैन अहिंसा विश्व में अलौकिक स्थान रखती है।

जैन मांसाहार से सर्वथा अलिप्त

इस उपयुक्त विवेचन में यह बात स्पष्ट हो जाती है कि श्रमण भगवान महावीर सर्वज्ञ सर्वदर्शी थे। उनके आचार और विचार यहाँ तक पवित्र थे कि जब वे अजीव पदार्थों का भी इस्तमाल (उपयोग) करते थे तो इस बात की पूरी सावधानी रखते थे– मेरे द्वारा किसी छोटे से छोटे प्राणी को भी कष्ट न पहुंचे।

इस विश्वविभूति ने जगत के प्राणियों को जिस अहिंसा के महान् पवित्र सिद्धांत का उपदेश दिया था उसका आचरण उनके रोम रोम में था। अर्थात जो कुछ वे जगत के प्राणियों को आचरण करने के लिये उपदेश देते थे उसको वे स्वयं भी पालन करते थे। उनके रोम रोम और शब्द शब्द से विश्व के प्रत्येक प्राणी के प्रति वात्सल्य भाव प्रगट होता था। उन्होंने केवलज्ञान प्राप्त कर लेने के बाद सर्वप्रथम यही उपदेश दिया था—"मा हण-मा हण (मत मारो मत मारो) अर्थात् किसी भी प्राणी की हिंसा मत करो और इस उपदेश के अनुसार हो जो उनके धर्म-मार्ग को स्वीकार करता था उसे वे सर्वप्रथम जीव हिंसा का त्याग रूप प्राणातिपात विरमण व्रत धारण कराते थे। फिर वह चाहे श्रमण हो अथवा श्रावक। इस का विवेचन हम पहले कर आये हैं।

श्रमण भगवान् महावीर की अहिंसा के विषय में भारत के महान् धाराशास्त्री सर अल्लाडी कृष्णा स्वामी अय्यर ने एक तात्त्विक दलील दी थी। उन्होंने कहा था कि मैं धारा शास्त्र का अभ्यासी होने से धार्मिक तत्त्वज्ञान में विशेष अध्ययन का लाभ नहीं

परन्तु Logically (तार्किक ढंग से) कहना पड़ता है कि मृग और गाय आदि प्राणी जो तृण भक्षण से अपना जीवन व्यतीत करते हैं वे यदि मांस भक्षण के विमुख बनें तो उसमें विशेषता ही क्या है ? तथ्य तो यही है कि सिंह का बच्चा मांस का विराग करे। यानी उनके कहने का अभिप्राय यह है कि धन-धान्य, ऋद्धि सिद्धि और वैभव की गोद में पला हुआ और ऊँची संस्कृति से भरे हुए क्षत्रिय कुल के वातावरण में पनपती हुई तलवार के खनक में तल्लीन होता हुआ क्षत्रिय कुल परम्परा का कुल केसरी समान खूनी संघर्ष के विरुद्ध सम्पूर्ण आन्दोलन करने के लिए सारी ऋद्धि सिद्धि और सम्पत्ति को मिट्टी के समान मान कर और भोग को रोग तुल्य समझ कर योग की भूमिका में अपनी आत्मा को शान्तिमय और अहिंसक बनाने के लिए वात्सल्य और करुणा की धाराओं में निस्पृही बन कर ज्ञातपुत्र वर्धमान (महावीर) त्याग जीवन व्यतीत करें। मात्र दिखावा ही नहीं किन्तु सत्यता एवं धर्म के हेतु अर्थात् शान्त-तपस्वी बन कर भटकता फिरे। साढ़े बारह वर्ष का घोर संयम यात्रा में अंगुलियों पर गिनने वाले नाम मात्र के दिनों में पारणा करता हुआ मृग समान वन में रहे और सारा काल अहिंसा के आत्म सिद्धान्त के पालन करने और ध्यान में निमग्न रहे। संयम की सर्वोत्कृष्ट साधना करने में तपश्चर्या रूप अग्नि की ज्वालाओं से अपनी आत्मा को कंचन समान निर्मल बनाने में संलग्न रहे। उनकी इस घोर तपस्या-संयम आदि अमूल्य जीवन-यात्रा के पर्दे में बड़ा भारी रहस्य था कि जिस में मात्र मानव-समाज ही था नहीं परन्तु प्राणी मात्र के परम श्रेय का लक्ष्य था।

मुझे तो यह तार्किक अनुमान बड़ा ही सुन्दर प्रतीत होता है। दया के परम्परागत संस्कार। वाले कुल में जन्म लेने वाला व्यक्ति दया का पालन करे और उसकी पुष्टि के लिये यत्न करे यह तो स्वाभाविक है तथा भोग सामग्री के अभाव में वैराग्य के वातावरण का असर उनका पर होना संभव है किन्तु राजकुल की ऋद्धि और ऐश्वर्य के सागर में म

बाहर कूद कर त्याग भूमि पर आने वाले तो कोई अलौकिक व्यक्ति ही नजर आते हैं।

भगवान महावीर ने जो त्याग तथा परिग्रह सहन किये उनका वर्णन करते हुए हृदय कांप उठता है। धन्य है उस महाप्रभु महावीर का जिन के हृदय में मित्र व शत्रु के समान हो शत्रुओं के श्रेय का भी स्थान था।

जैनागमों में कहा है कि वे मात्र क्षमा में ही वीर न थे किन्तु दानवीर दयावीर शान्तवीर त्यागवीर तपवीर धर्मवीर कर्मवीर और ज्ञानवीर आदि सब गुणों में वीर शिरोमणि होने से उनका वर्धमान नाम गौण होकर महावीर नाम विख्यात हुआ।

भगवान ने कहा किसी दूसरे शत्रु और आत्म को जीत कर वश में करने वाला सच्चा विजेता नहीं किन्तु जिसने अपनी आत्मा को जीता है (self conqueror) वही सच्चा विजेता है।

उनका बताया हुआ अहिंसावाद कर्मवाद तत्ववाद स्याद्वाद सृष्टिवाद आत्मवाद परमाणुवाद और विज्ञानवाद इत्यादि सब विषय इतना विशाल और गम्भीर है जिनका अभ्यास करने से उनकी सर्वज्ञता स्पष्ट सिद्ध होती है।

उन्होंने सर्वसाधारण जनता को मानव संस्कृति विज्ञान (Science of Human culture) के विकास की पराकाष्ठा पर पहुंचने के लिये मुक्ति मार्ग का राजमार्ग (Royal road) सम्यग्दर्शन सम्यग्ज्ञान और सम्यक् चारित्र (Right faith Right knowledge and Right conduct) रूप अपूर्व साधन द्वारा पद्धतिसर दर्शाया। इसलिये वे तीर्थंकर कहलाये।

संसार में तीर्थंकर पद सर्वोत्कृष्ट सर्वोपरि और सर्वपूज्य होने के कारण उस काल में बौद्धमतादि भिन्न-भिन्न धर्मों के संस्थापक और संचालक अपने आपको तीर्थंकर कहलाने में उत्सुकता पूर्वक प्रतिस्पर्धा की दौड़धूप मचा रहे थे। अर्थात् उस समय मत प्रतिस्पर्धा (Religious rivalry) की होड़-होड़ मच रही थी। जब कि आप सत्ता और प्रसिद्धि

(Power and popularity) प्राप्त करने के लिये होड़ मच रही है। परन्तु कहावत है कि All that glitters is not gold) (प्रत्येक चमकने वाली वस्तु सोना नहीं होती)। इस उक्ति के अनुसार यदि युक्ति और अनुभूति द्वारा गुणी और विचारक (People of Culture and common sense) के लिए यह समझना कोई कठिन बात नहीं है कि साधक का ज्ञान के लिए जिस योग्यता का होना आवश्यक है वह भगवान महावीर के सिवाय उनके समकालीन अन्य किसी भी महापुरुष में नहीं था।

भगवान महावीर के परम पवित्र प्रवचन का आधार मन कल्पना और अनुमान की भूमिका पर तो था ही नहीं। उनका तत्वज्ञान वास्तविकता पर अवलम्बित है। ऐसा कहना कोई अत्युक्ति न होगी कि उनका प्राण-विज्ञान और परमाणुवाद आधुनिक विज्ञान के (Atomic and moleculer—theories) अणुवाद की मान्यता से तो क्या परन्तु डाक्टर एस्टीन एडिंगटन स्पेंसर न्यूटन और युग की (theories) मान्यताओं को भी मात करता है। भारतीय तथा पाश्चात्य अनेक विद्वानों ने भगवान महावीर के सिद्धान्तों की भूरि-भूरि प्रशंसा की है।

जर्मन विद्वान डा० हर्मन जकोबी कहते हैं कि —

In conclusion let me assert my conviction that Jainism is an original system quite distinct from and independent of all others and that therefore it is of great importance for the study of philosophical thought and religious life in India

अर्थात्—अन्त में मुझे अपना निश्चित विचार प्रगट करने दो मैं कहूंगा कि जैनधर्म के सिद्धान्त मूल सिद्धान्त हैं। वह धर्म स्वतन्त्र और अन्य धर्मों से सर्वथा भिन्न है। प्राचीन भारतवर्ष के तत्वज्ञान का और धार्मिक जीवन का अभ्यास करने के लिए यह बहुत उत्तम है।

ऐसे सर्वोच्च आचरण तथा उपदेश करने वाले महान् तत्वज्ञानी.

करुणा के प्रत्यक्ष अवतार सर्वज्ञ सर्वदर्शी तीर्थंकर श्रमण भगवान् महावीर स्वयं मांसाहार कैसे कर सकते थे ? कदापि नहीं कर सकते थे ।

इतिहास इस बात का साक्षी है कि अन्य मांस मत्स्यभक्षी बौद्ध, वैदिक आदि धर्मों के समान जैनधर्म भारत की सीमाओं को न लांघ सका। इसका मुख्य कारण यही है कि यह मत्स्य मांसादि अभक्ष्य भक्षण का सदा से निषेध करता आया है । इसीलिये मांसाहारी देशों में इसका प्रसार न हो पाया ।

इस उपर्युक्त विवेचन से यह बात स्पष्ट हो जाती है कि न तो भगवान महावीर आदि जैन तीर्थंकर अथवा निर्ग्रंथ श्रमण मांसाहार ग्रहण कर सकते हैं और न ही श्रमणोपासक गृहस्थ (श्रावक–श्राविकाएं) मांस खा सकते अथवा पका सकते हैं । यही कारण है कि वर्तमान जैन समाज भी कट्टर निरामिषाहारी है तथा वे सराकादि जातियाँ भी जो सैकड़ों वर्षों से जैनधर्म को भूल चुकी हैं उनके ऊपर भी आज पर्यन्त जैन-तीर्थंकरों की अहिंसा की इतनी गहरी छाप है कि वे आज भी कट्टर निरामिषाहारी रहे हैं । मात्र इतना ही नहीं किन्तु जो लोग जैन समाज में होते हुए किसी भी प्रकार का व्रत ग्रहण नहीं करते वे भी मत्स्य–मांस जैसे अभक्ष्य पदार्थों का सेवन नहीं करते ।

तथागत गौतमबुद्ध बौद्धभिक्षु तथा बौद्धगृहस्थ खुल्लमखुल्ला मांसाहार करते थे इसी का परिणाम है कि आज भी सारा बौद्ध जगत् सर्व भक्षी है।

श्री धर्मानन्द कोशाम्बी ने भगवान् बुद्ध नामक पुस्तक में जिन जैन सूत्रों को लेकर यह सिद्ध करने की हास्यास्पद चेष्टा की है कि भगवान महावीर और उनके अनुयायी श्रमण मांसाहार करते थे । उनके किए हुए अर्थ के साथ भगवान महावीर की जीवनचर्या तथा उपदेशों (आचार विचार) से बिल्कुल मेल नहीं खाता । इस से यह स्पष्ट है कि उनके द्वारा किया हुआ इन सूत्रों का अर्थ ठीक नहीं है परन्तु इन का दूसरा ही अर्थ होना चाहिये ।

[illegible]

थे इसलिये तथागत बुद्ध के प्रति उन्हें अगाध श्रद्धा होना स्वाभाविक था। उन्होंने अपनी पुस्तक "भगवान बुद्ध" में यह बात सिद्ध करने का भरसक प्रयत्न किया कि गौतम बुद्ध मांसाहारी नहीं थे। यह भी उल्लेख किया कि उस समय जैनादि उन पर मांसाहार का आक्षेप भी किया करते थे।

परन्तु जब कौशाम्बी जी तथागत बुद्ध और उनके भिक्षु गण को निरामिषभोजी सिद्ध करने में असमर्थ रहे तब उन्होंने भगवान महावीर और उनके श्रमण संघ पर भी मांसाहार का दोष लगाने की चेष्टा की। जैनागमों के मूलपाठों का विपरीतार्थ कर इस बात को सिद्ध करने की जो उन्होंने अनाधिकार चेष्टा की है उसके विषय में हम आगे चल कर विवेचन करेंगे। हमारी धारणा है कि उन्हें इस बात की चिन्ता थी कि तथागत गौतम बुद्ध एवं उनके भिक्षु मांसाहारी होने से जैन तीर्थंकर भगवान महावीर उनके निर्ग्रन्थ श्रमणों व्रतधारी श्रावकों तथा अन्य गृहस्थों से भी कहीं हीन न गिने जावें इसलिए उन्होंने निराधार परम्परा पर ऐसी अनुचित आक्षेप करने की चेष्टा की है। एक अंग्रेज लेखक ने ठीक ही कहा है कि शारीरिक सन्तान (पुत्र-पुत्री आदि) से भी मानसिक सन्तान (अपने विचारों) पर मनुष्य का अधिक प्रेम होता है। अपने अभिप्राय पर अयोग्य अनुराग, एकान्त आग्रह मनुष्य को सत्य की पहिचान करने में बड़ा बाधा उत्पन्न करते हैं।

सारांश यह है कि कौशाम्बी जी ने तथागत गौतमबुद्ध के मांसाहार के दोष को ढाकने के लिये ही यह असफल प्रयत्न किया है।

बुद्ध ने केवल अहिंसा का उपदेश दिया था परन्तु भगवान महावीर ने अहिंसा को मूल सिद्धान्त का दर्जा देकर चारित्र व्रत में सर्वप्रथम सम्मिलित किया। बौद्ध मत की अहिंसा थोथा उपदेश बन कर ही रह गयी। क्योंकि तथागत गौतम बुद्ध उसे अपने आचार और व्यवहार में न उतार सके। यदि उन्होंने अपने आचार और व्यवहार में उतारा होता तो बौद्ध जगत् कदापि मांसाहारी न होता। इस से स्पष्ट है कि वह अहिंसा धर्म के मर्म को समझ ही न पाये। भगवान् महावीर ने अपने

आचरण और उपदेश से जगत के सामने अहिंसा का इतना सुन्दर स्वरूप रक्खा कि आज भी जैन समाज पूर्ववत कट्टर निरामिषाहारी है। उन्होंने फरमाया कि किसी के अस्तित्व को न मिटाओ। जिस प्रकार प्राणिहिंसा दुर्गति का कारण है उसी प्रकार मांस भक्षण भी दुर्गति का कारण है। आप ने ऐसे धर्म को धर्म कहा जो सब प्राणियों का रक्षक हो और ऐसे धर्म को निर्वाण का राजमार्ग कहा।

१ प्रो० डी० सी० शर्मा अपनी पुस्तक हिंदुइज्जम में लिखते हैं —

Buddhism only teaches the doctrine of the sanctity of animal life but Jainism not only taught it but also put it into practice A Buddhist may not kill or do injury to any creature himself but apparently he is allowed to purchase meat from a butcher A Jain on the other hand is bound to be a strict Vegetarian'

अर्थात्—बुद्ध धर्म केवल पशु के जीवन की रक्षा का ही उपदेश देता है। जैन धर्म ने केवल उपदेश ही नहीं दिया परन्तु उपदेश के साथ आचरण में भी उतारा है। एक बौद्ध किसी पशु का स्वयं वध अथवा हिंसा चाहे न करे परन्तु उसे निसंकोच कसाई की दुकान से मांस खरीदने की आज्ञा है। दूसरी ओर एक जैन निश्चयरूपेण दृढ़ शाकाहारी है।

मांस भक्षण से मात्र जैन ही अलिप्त रहे हैं

प्रो० ए० चक्रवर्ती एम० ० तिरुकुरल" पुस्तक पृ० ३० ३१ में लिखते हैं कि —

Meat eating drinking wine and sexual intercourse which are condemned by the *Jains* are accepted by the Kapalikas as a fundamental practice of their faith.

The *Buddhist* rejected the authority of the *Vedas*, yet they did not give up meat eating *Buddhist* bhikshus and the laymen, though they observed the principle of

Ahimsa were all meat eaters They observed the principle of Non violence only to this extent that they did not kill any animal with their own hands They have no objection to purchase meat from the butchers so long as they do not themselves kill Even while *Gautama Buddha* was alive this practice was prevalent This we learn from the Buddhist Scriptures When that is the case with the Buddhist Bhikshus the Buddhist laymen have no restriction in eating meat If we are to mention a distinctive Characteristic of the *Jains* we have to say that it is their strict Vegetarian diet This distinguishes the *Jains* from Others

From the *Vedic Dharam Shastras of* Manu Bodhayana and the later law makers belonging to Vedic schools we notice the following on the chapter Madhuparka, Bodhayana gives a list of 25 or 26 animals that are to be killed

Another prominent fact about the *Dharma Shastras of Vedic* school is the place given to agriculture in the scheme Agriculture is considered to be the meanest profession and only the *Sudras* of the fourth *Varna* are fit to be engaged in this profession It is beneath the dignity of the *Dvyas* to engage themselves in agricultural occupation Certainly the priests of the *higher Varna* cannot think of touching the plough

अर्थात् —जिन मांस भक्षण मदिरापान तथा व्यभिचार का जैना ने निंद्य मान कर त्याग किया था उन्हें कापालिकों ने श्रद्धा से मूल सिद्धान्त रूप से स्वीकार किया था। यानी उन्होंने मांसाहार मदिरापान तथा व्यभिचार सेवन को धर्म रूप स्वीकार किया था।

बौद्धों ने वेदों को तो प्रामाणिक नहीं माना किन्तु मांस भक्षण का त्याग नहीं किया। बौद्ध भिक्षु तथा बौद्ध गृहस्थ अहिंसा

को स्वीकार करते हुए भी मासाहारी थे। वे अहिंसा का इस रूप से मानते थे कि पशुओं की स्वयं हत्या नहीं करना। परन्तु उन्हें कसाई के यहां से ऐसा मांस खरीदने में कोई आपत्ति नहीं थी, जिसे उन्होंने स्वयं न मारा हो, बौद्ध ग्रंथों से हम ऐसा जान सकते हैं। जब तथागत गौतम बुद्ध स्वयं विद्यमान थे तब भी यह प्रथा प्रचलित थी। जब बौद्ध भिक्षु इस प्रकार (बे रोक-टोक) मांसाहार करते थे तब बौद्ध गृहस्थों को भी मांसभक्षण का कोई प्रतिबन्ध नहीं था। यदि बौद्धों से जैनों की कोई मौलिक विशेषता खोजने जावें तो हम यह निःसंदेह कहना पड़ेगा कि जैन कट्टर शाकाहारी हैं।

हम वैदिक धर्मानुयायी मनु बोधायन तथा उनके बाद के वैदिक सिद्धान्त निर्माताओं के धर्मशास्त्रों में से नीचे लिखे विचार पाते हैं —

मधुपर्क में ...ायन ने २५ या २६ ऐसे पशुओं की सूची दी है जो कि (मांसाहार के लिये) वध करने योग्य हैं।

वैदिक धर्मशास्त्रों में एक और विशेष बात यह भी पायी जाती है कि उन्होंने खेती-बाड़ी को एक निकृष्ट कार्य मान कर उसे चौथे वर्ण यानी शूद्र के करने के योग्य बतलाया है। द्विजों ने खेती-बाड़ी के धंधे को स्वयं करना अपनी हीनता माना है। मात्र इतना ही नहीं परन्तु ऊंचे वर्णों के धर्मप्रचारकों ने तो हल को छूने तक का विचार मात्र करना भी नितान्त अनुचित माना है।

सारांश यह है कि वैदिक धर्मानुयायी मांसभक्षण को उत्तम मानते थे तथा खेती-बाड़ी को निकृष्ट। जैनों ने मांस भक्षण को एक दम त्याज्य माना और खेती-बाड़ी को जैन श्रमणोपासकों (श्रावकों) के लिये त्याज्य नहीं माना। उपासकदशांग जैनागम में भगवान् महावीर के जिन दस श्रावकों का चरित्र चित्रण किया गया है उनका मुख्य व्यवसाय प्रायः

[१]

तथागत गौतम बुद्ध द्वारा निर्ग्रंथ चर्या में माम-भक्षण निषेध

हम लिख चुके हैं कि बुद्ध के समय में छह से बड़े श्रमण संघ थे। इन सब में निग्रन्थों (जैनों) का नाम ही सर्वप्रथम आता है। वे राजगृह में अथवा उसके आस-पास के क्षेत्रों में अधिक संख्या में निवास करते थे।

गौतम बुद्ध घर-बार छोड़कर निर्वाण मार्ग जानने के लिये यात्रियों के शिष्य बने। बौद्ध ग्रंथ 'ललितविस्तर' में लिखा है कि बोधिसत्व (गौतम बुद्ध) पहले वैशाली गये और वहां आलार कालाम के शिष्य बने। वे योगी बड़े ज्ञानी थे और जाति के ब्राह्मण थे। बुद्ध ने उनके पास से योग की बातें सीखीं तप भी किया किन्तु उससे उन्हें सन्तोष नहीं हुआ तब बुद्ध ने उन्हें छोड़ दिया। बौद्ध ग्रंथ 'मज्झिमनिकाय' के 'महासिंहनाद सुत्त' में बुद्ध की तपश्चर्या का वर्णन है। उन्होंने अनेक प्रकार की तपश्चर्याएं की और छोड़ीं। अन्त में बोधिसत्व ने उस समय के श्रमण सम्प्रदाय के अनुसार तीव्र तपश्चर्या करने का निश्चय किया और प्रसिद्ध श्रमण नायकों का तत्वज्ञान जान लेने के उद्देश्य से राजगृह गये। वहां सब श्रमण सम्प्रदायों में यथाविधि मात्रा में तपश्चर्या दिखलायी देने से उन्हें ऐसा लगा कि उन्हें भी वैसा ही तपश्चर्या करनी चाहिये। इसलिये 'सुत्तनिपात' के 'पब्बज्जा सुत्त' की अन्तिम गाथा में बुद्ध स्वयं कहते हैं कि अब मैं तपश्चर्या के लिये जा रहा हूँ। उस समय राजगृह के चारों ओर जो पहाड़ियां हैं उन पर निग्रंथ (जैन) श्रमण तपश्चर्या करते

थे ऐसा उल्लेख जैनागमों में तथा बौद्ध पिटकों में अनेक स्थलों पर मिलता है।

निग्रंथ सम्प्रदाय के प्रतिष्ठित नियामक तेईसवें तीर्थंकर भगवान पार्श्वनाथ जी थे। इनका निर्वाण बुद्ध के जन्म से पूर्व १९३ वर्ष में हुआ था। उनकी शिष्यपरम्परा के निग्रंथों का अस्तित्व उस समय राजगृह में सर्वाधिक था।

तथागत गौतम बुद्ध निगंठ नायपुत्त (श्रमण भगवान् महावीर) से प्रथम पैदा हुए और प्रथम ही परिनिर्वाण प्राप्त किया। यह बात ऐतिहासिक दृष्टि से अब सिद्ध हो चुकी है। भगवान महावीर तथा गौतम बुद्ध समकालीन थे तथा उन दोनों के अपने अपने धर्म प्रचार का क्षेत्र एक ही रहा। कई वर्षों तक एक दूसरे से मिले बिना वे दोनों अपने-अपने सिद्धांतों का प्रचार करते रहे।

बुद्ध ने निग्रंथों के तप प्रधान आचारों की अवहेलना की है ऐसा वर्णन बौद्ध पिटकों में पाया जाता है। परन्तु बुद्ध ने स्वयं अपनी बुद्धत्वप्राप्ति के पहले की तपश्चर्या और चर्या का जो वर्णन किया है उसके साथ तत्कालीन निग्रंथ आचार का जब हम मिलान करते हैं तथा कपिलवस्तु के निग्रंथ श्रावक वप्प शाक्य जो कि भगवान पार्श्वनाथ के निग्रंथ श्रमणों का उपासक था उस का निर्देश सामने रखते हैं (सुत्त की अट्ठकथा में वप्प को गौतम बुद्ध का चाचा कहा है) एवं बौद्ध पिटकों में पाये जाने वाले खास आचार और तत्त्व ज्ञान सम्बन्धी कुछ पारिभाषिक शब्द जो केवल निग्रंथ प्रवचन में ही पाये जाते हैं इन सब पर विचार करते हैं तो ऐसा मानने में कोई सन्देह नहीं रहता कि तथागत गौतम बुद्ध ने भगवान पार्श्वनाथ की परम्परा को स्वीकार किया था। अध्यापक धर्मानन्द कौशाम्बी ने भी अपनी अंतिम पुस्तक 'पार्श्वनाथाचा चातुर्याम धर्म' (पृष्ठ २४, २६) में ऐसी ही मान्यता सूचित की है।

गौतम बुद्ध 'सारिपुत्त' से कहते हैं कि "मैं बताता हूँ कि मेरा तपस्विता कैसा था" —

"मैं नंगा रहता था। लौकिक आचारों का पालन नहीं करता था। हथेली पर भिक्षा ले कर खाता था। अगर कोई कहता कि 'भदन्त', इधर आइए तो मैं नहीं सुनता था। बैठे हुए स्थान पर ला कर दिए हुए अन्न को, अपने लिए तैयार किये हुए अन्न को और निमंत्रण को मैं स्वीकार नहीं करता था। जिस बर्तन में अन्न पकाया गया हो उसी बर्तन में अगर वह अन्न लाकर मुझे दिया जाता तो मैं उसे ग्रहण नहीं करता था। देहरी या डण्डे के उस पार रह कर दी गयी भिक्षा को मैं नहीं लेता था। ओखली में से अगर कोई खाना या पदार्थ ला कर दिया जाता तो मैं उसे ग्रहण नहीं करता था। दो व्यक्ति भोजन कर रहे हों और उन में से एक उठ कर भिक्षा दे तो मैं उसे ग्रहण नहीं करता था। गर्भिणी, बच्चे को स्तन पान कराने वाली या पुरुष के साथ एकान्त सेवन करने वाली स्त्री से भी मैं भिक्षा नहीं लेता था। मेले या तीर्थ-यात्रा में तैयार किए गए अन्न की भिक्षा मैं नहीं लेता था। जहाँ कुत्ता खड़ा हो या मक्खियों की भीड़ और भिनभिनाहट हो वहाँ भिक्षा नहीं लेता था। मत्स्य, माँस, सुरा आदि वस्तुएँ नहीं लेता था। एक ही घर से भिक्षा लेकर एक ही ग्रास पर मैं रहता था। या दो घरों से भिक्षा ले कर दो ग्रासों पर रहता था और इस प्रकार सात दिन तक बढ़ाते हुए सात घरों से भिक्षा ले कर सात ग्रास खा कर मैं रह जाता था। मैं एक कलछी भर अन्न भी लेता था और इस प्रकार सात दिन तक सात कलछी अन्न ले कर उस पर निर्वाह करता था। एक दिन छोड़ कर यानी हर तीसरे दिन भोजन करता था। इस प्रकार उपवासों की संख्या बढ़ाते-बढ़ाते सप्ताह में एक बार या पखवाड़े में एक बार भोजन किया करता था।

मैं दाढ़ी मूछें और बाल उखाड़ डालता था। मैं खड़ा रह कर तपस्या करता था ... तपस्या करता था।

... मेरे शरीर पर मल

जसे कोई तिंदुक वृक्ष का तना अनेक वर्षों की धूल से भर जाता है, मेरी देह वैसी हो गया थी। पर मुझे ऐसा नहीं लगता था कि धूल की परतें मैं स्वयं झाड़ लूँ या दूसरा कोई व्यक्ति मुझे हाथ से निकाल दे।

मैं बड़ी सावधानी से आता जाता था। पानी की बूँद पर भी मेरी तीव्र दया रहती थी। ऐसी विषम अवस्था में फंसे हुए सूक्ष्म प्राणी का भी नाश मेरे हाथों से न हो जावे इसके लिए मैं बहुत सावधानी रखता था। ऐसी मेरी जुगुप्सा (हिंसा के प्रति अरुचि) थी।

मैं किसी भयावन जंगल में रहता था। जो कोई सांसारिक प्राणी उस अरण्य में प्रवेश करता उसके रोंगटे खड़े हो जाते थे वह इतना भयंकर होता था। जाड़ों में भयानक हिमपात होने के समय मैं खुली जगह में रहता था और दिन में जंगल में घुस जाता था। गर्मी के मौसम के अंतिम महीने में दिन के समय खुली जगह में रहता था और रात को जंगल में चला जाता था। (ध० को० कृत भगवान बुद्ध पृष्ठ ६८-७१)

इस तपस्या के बारे में गौतम बुद्ध स्वयं कहते हैं— मेरा शरीर (दुबलेपन की) चरम सीमा तक पहुँच गया था। जैसे अस्सी वर्ष वाले की गाठें, वैसे ही मेरे अङ्ग प्रत्यङ्ग हो गये थे। जैसे ऊँट के पैर वैसे ही मेरा कूल्हा हो गया था। जैसे सूओं की (ऊंची नीची) पांती वैसे ही पीठ के कांटे हो गये थे। जैसे शाल की पुरानी कड़ियाँ टेढ़ी मेढ़ी हो जाती हैं वैसी ही मेरी पसुलियाँ हो गयी थीं। जैसे गहरे कुएं में तारा वैसे ही मेरी आँखें दिखाई देती थीं। जैसे कच्ची तोड़ी हुई कड़वी लौकी हवा धूप में चुचक जाती है, मुर्झा जाती है वैसे ही मेरे सिर की खाल चुचक मुर्झा गयी थी। उस अनशन से मेरे पीठ के कांटे और पेट की खाल बिल्कुल सट गयी थी। यदि मैं पाखाना या पेशाब करने के लिए उठता तो वहीं बहरा कर गिर पड़ता। जब मैं काया को सहराते हुए हाथ से गात्र को ... काया से सड़ी जड़ वाले रोम झड़

... कोई कहते ... मेरा

वस्त्र परिशुद्ध गौर चमड़े का रंग नष्ट हो गया था।' (वही पृ० १४८)

पुनः सोचा कि — यह दुष्कर तपश्चर्या है घोर-तप का मार्ग देने वाला नहीं है अनर्थकारी है (दुक्कर अनरिया अनत्थ संहिता)। और मन स्थूल आहार ग्रहण करना आरम्भ कर दिया।

अन्त में बोधिसत्त्व के मन ने यह निश्चय किया कि तपश्चर्या बिल्कुल निरर्थक है। अतः तपश्चर्या का त्याग कर दिया।

इस उपर्युक्त विवरण से यह ज्ञात होता है कि गौतम बुद्ध ने घर से निष्क्रमण के बाद आलार कालाम आदि योगियों के पास रहकर उन के द्वारा बताए मार्गों तथा उनकी भावनाओं के अनुसार तप आदि भी किये किन्तु जब वह वहाँ से ऊब गए तो दूसरे धर्म सम्प्रदाय में शामिल हुए। इस प्रकार छः साल वर्षों तक अनेक धर्म सम्प्रदायों में शामिल होकर छोड़ते गए। अर्थात् पूर्व पूर्व गुरुओं की चर्या तथा तत्त्व का मार्ग छोड़ कर अपनी विचारधारा से एक नये सम्प्रदाय की स्थापना की। वह सम्प्रदाय आज बौद्धधर्म के नाम से प्रसिद्ध है।

—०—

बौद्ध जैन मवाद में मांसाहार निषेध

जैनागम सूत्रकृतांग के दूसरे श्रुत स्कन्ध के छठे अध्ययन में एक प्रसंग आता है जो इस प्रकार है —

श्रमण भगवान महावीर का चतुर्मास राजगृह में था। चतुर्मास के बाद भी भगवान राजगृह में धर्मप्रचारार्थ ठहरे। उस समय प्रचार का आशातीत फल हुआ।

एक बार भगवान् के शिष्य आर्द्रकमुनि भगवान का वन्दन करने के लिए गुणशील चैत्य में जा रहे थे। रास्ते में उनका शाक्यमुनि के भिक्षु से इस प्रकार वार्तालाप हुआ। उस वार्तालाप में जीवहिंसा और मांसाहार सम्बन्धी जैनों का क्या सिद्धान्त है इसका भी खुलासा आर्द्रकमुनि ने किया है जो कि इस प्रकार है —निग्रंथ आर्द्रकमुनि ने शाक्यमुनि के भिक्षु से कहा कि —

"जीवों की खुले आम हिंसा करना संयतों (मुनियों) के लिए सर्वथा अयोग्य है। जो ऐसे कामों का उपदेश देते हैं और जो उसे सुन कर उचित समझते हैं वे दोनों अनुचित काम करने वाले हैं।

'महाशय! इस सिद्धांत से तो तत्त्वज्ञान नहीं पा सकने लोक का करामलकवत प्रत्यक्ष नहीं कर सकते। भिक्षुजन! जो श्रमण शुद्ध आहार करते हैं जीवों के कर्मविपाककी चिंता करते हुए आहार विधि के दोषों को टालते हैं और निष्कपट वचन वाले हैं वे ही संयत हैं और यही संयतों का धर्म है।

जिनके हाथ लहू से रंगे हैं ऐसे असंयत मनुष्य दो हजार बोधिसत्त्व (बौद्ध) भिक्षुओं को नित्य भोजन कराते हुए भी यहाँ निन्दा के पात्र

बनते हैं और परलोक में दुर्गति के अधिकारी बनते हैं। और जो यह कहते हैं कि बड़े बकरे को मारकर और मिर्च-मसाले डालकर तैयार किये हुए मांस के भोजन के लिए कोई निमन्त्रण दे तो हम उस मांस को खा सकते हैं और उस में हम कोई पाप नहीं लगता, वे अनार्यधर्मी और रसलोलुपी हैं। भोजन करने वाले पाप को न जानते हुए भी पाप का आचरण करते हैं। जो कुशल पुरुष हैं वे मन से भी ऐसे आहार की इच्छा नहीं करते और न ही ऐसी मिथ्या बातें बोलते हैं।

जैन मुनि सब जीवों की दया की खातिर पाप-दोष का वर्जन करते हुए दोष की शंका से भी ऐसे आहार को ग्रहण नहीं करते। संसार में संयती का यही धर्म है। इस आहारशुद्धि रूप समाधि और शील गुण को प्राप्त कर जो वैराग्य भाव से निर्ग्रन्थ (जैन मुनि) धर्म का पालन करते हैं वही तत्त्व ज्ञाता मुनि इस लोक में कीर्ति प्राप्त करते हैं।

उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट है कि निर्ग्रन्थ श्रमण सदा इस बात की सावधानी रखते हैं कि उनके द्वारा छोटे-से छोटे जिवाणु की भी हिंसा न हो। इसीलिये वे रात्रि को भोजन भी नहीं करते यानी सूर्यास्त के बाद वे कोई वस्तु खाते पीते नहीं। रात्रि को दीपक भी नहीं जलाते इसलिये कि उस पर पतंगों के गिरने की सम्भावना रहती है। वे उठते-बैठते सोते जागते चलते फिरते खाते-पीते सब अवस्थाओं में सदा इस बात की सावधानी रखते हैं कि किसी भी प्रकार से बड़े से लेकर छोटे-से-छोटे जीव जन्तु की भी हिंसा न हो जाय। वे वर्षा ऋतु में ग्रामान्तर नहीं जाते एक ही नगर अथवा ग्राम में वास करते हैं क्योंकि इस ऋतु में असंख्य सूक्ष्म जीवों की उत्पत्ति हो जाने से ग्रामान्तर जाने-आने में हिंसा होना सम्भव है। वे छः जीवनिकाय की यत्न पूर्वक रक्षा करते हैं।

इसी स्तम्भ में निर्ग्रन्थ मुनि आर्द्रक के संवाद में यह भी स्पष्ट वर्णन है कि उन्होंने बौद्ध भिक्षु को मांसाहार में दोष बतलाते हुए बतलाया है प्राण्यंग मांसाहार करने वाला व्यक्ति न तो संयमी ही बन सकता है और

न वह मानवान् ही कहला सकता है एवं न वह स्वपर का कल्याण ही कर सकता है। ऐसी अवस्था में मोक्ष की प्राप्ति भी कभी नहीं हो सकती।

निर्ग्रन्थ श्रमण के लिये नव कोटि (हिंसा करना नहीं, कराना नहीं और करते को भला जानना नहीं। मन से नहीं करना, वचन से नहीं करना और काया से नहीं करना इत्यादि। इस प्रकार ३ × ३ = ९ कोटिक) अहिंसा की सूक्ष्म व्याख्या को व्यवहार में लाने के लिए बाह्य प्रवृत्ति को विशेष नियन्त्रित कर जीवहिंसा तथा मांसाहार आदि का सर्वथा निषेध किया है। निर्ग्रन्थ श्रमणों की चर्या सदा से ही उग्र चली आ रही है और उनके त्याग संयम तप तथा अहिंसा का स्वरूप अनुपम एवं अलौकिक रहता आया है। इसलिए उनके चारित्र की गहरी छाप तत्कालीन जनता पर पड़ना स्वाभाविक था। यही कारण है कि निर्ग्रन्थ श्रमणों की चर्या का उस समय के मानव समाज पर बहुत बड़ा प्रभाव था जिससे आकर्षित होकर शाक्य मुनि गौतम बुद्ध ने पार्श्वापत्य निर्ग्रन्थ परम्परा में दीक्षा ग्रहण की तथा उनके तत्त्वज्ञान को जाना। उन्होंने अपनी निग्रन्थचर्या में प्रवेश करने से पहले स्पष्ट लिखा है कि—"मैं प्रसिद्ध श्रमण नायकों का तत्त्वज्ञान जान लेने के उद्देश्य से राजगृह जाता हूँ।" वहाँ जाकर निर्ग्रन्थ धर्म में दीक्षित होकर जिस चर्या का उन्होंने आचरण किया है उसमें उन्होंने इस बात का भी स्पष्ट उल्लेख किया है कि—"उस अवस्था में मैं मत्स्य [illegible] आदि का सेवन नहीं करता था।" इससे यह स्पष्ट है कि [illegible] विचार में [illegible] मत्स्य मांसादि के भक्षण का सर्व [illegible]

द्वितीय खण्ड

निग्गंठ नायपुत्त श्रमण भगवान महावीर पर मांसाहार के आक्षेप का निराकरण

[११]

महाश्रमण भगवान् महावीर स्वामी पर मांसाहार के आरोप का निराकरण

जैनों के पाँचवें अंग श्री भगवतीसूत्र के जिस पाठ का अर्थ करते हुए श्रमण भगवान महावीर को मांसाहारी सिद्ध करने की जो अनुचित चेष्टा की गयी है उसके विषय में इस विचित्र कल्पना का निरसन करना नितान्त आवश्यक है जिससे पाठक वास्तविकता को समझ सकें।

भगवती सूत्र के पन्द्रहवें शतक में गोशालक का वर्णन आता है। उसका संक्षिप्त सारांश यह है —

गोशालक पहले भगवान् महावीर का शिष्य था और भगवान् के साथ लगभग छः वर्षों तक रहा। अलग होने के बाद उसने तेजोलेश्या सिद्ध की तथा अष्टांग निमित्त का अभ्यास करके अपने आप की सर्वज्ञ होने की उद्घोषणा की। एक बार वह श्रावस्ती नगरी में आया और वहाँ अपने आप को सर्वज्ञ रूप में प्रसिद्ध करने लगा। जनता में इस बात की चर्चा होने लगी। बाद में उसी नगरी में भगवान महावीर स्वामी पधारे। नगर निवासियों ने गोशालक की सर्वज्ञता की बात भगवान महावीर के मुख्य शिष्य श्री इन्द्रभूति गौतम स्वामी से पूछी। गौतम स्वामी ने प्रभु महावीर से पूछा। तब प्रभु ने गोशालक का सारा जीवन कह सुनाया तथा गोशालक ने सर्वज्ञत्व (जिन पद) प्राप्त नहीं किया यह भी कहा। गोशालक का यह जीवनचरित्र लोगों में चर्चा का विषय बन गया। यह बात गोशालक के कानों तक भी पहुँची तब वह बहुत क्रोधित हुआ। क्रोध में जलता भुनता एक बार वह प्रभु महावीर स्वामी

[११]

महाश्रमण भगवान् महावीर स्वामी पर मांसाहार के आरोप का निराकरण

जैनों के पाँचवें अंग श्री भगवतीसूत्र के जिस पाठ का अर्थ करते हुए श्रमण भगवान महावीर को मांसाहारी सिद्ध करने की जो अनुचित चेष्टा की गयी है उसके विषय में इस विचित्र कल्पना का निरसन करना नितान्त आवश्यक है जिससे पाठक वास्तविकता को समझ सकें।

भगवती सूत्र के पन्द्रहवें शतक में गोशालक का वर्णन आता है। उसका संक्षिप्त सारांश यह है —

गोशालक पहले भगवान महावीर का शिष्य था और भगवान के साथ लगभग छः वर्षों तक रहा। अलग होने के बाद उसने तेजोलेश्या सिद्ध की तथा अष्टांग निमित्त का अभ्यास करके अपने आप के सर्वज्ञ होने की उद्घोषणा की। एक बार वह श्रावस्ती नगरी में आया और वहाँ अपने आप को सर्वज्ञ रूप में प्रसिद्ध करने लगा। जनता में इस बात की चर्चा होने लगी। बाद में उसी नगरी में भगवान महावीर स्वामी पधारे। नगर निवासियों ने गोशालक की सर्वज्ञता की बात भगवान महावीर के प्रमुख शिष्य श्री इन्द्रभूति गौतम स्वामी से पूछी। गौतम स्वामी ने प्रभु महावीर से पूछा। तब प्रभु ने गोशालक का सारा जीवन वृत्तान्त सुनाया तथा गोशालक ने सर्वज्ञत्व (जिन पद) प्राप्त नहीं किया यह भी कहा। गोशालक का यह जीवनचरित्र लोगों में चर्चा का विषय बन गया। यह बात गोशालक के कानों तक भी पहुँची तब वह बहुत क्रोधित हुआ। क्रोध में जलते हुए एक बार वह प्रभु महावीर स्वामी

के पास गया और वहाँ अपने वास्तविक स्वरूप को छिपाने का प्रयत्न किया। तब भगवान ने जो ठीक बात थी, उसे कहा। इससे वह और भी क्रोधित हो गया। यह देखकर उसे दो साधु समझाने गये तब उसने उनपर तेजोलेश्या छोड़कर उन्हें जलाकर भस्म कर दिया। भगवान् ने उसे समझाया परन्तु परिणाम उल्टा निकला।

उसने भगवान पर भी तेजोलेश्या छोड़ी। यह तेजोलेश्या भगवान का स्पर्श करके वापिस गोशालक के शरीर में प्रवेश कर गयी और उस तेजोलेश्या की जलन से गोशालक सातवीं रात्रि को पित्तज्वर के दाह से मृत्यु को प्राप्त हो गया।

इस तेजोलेश्या के स्पर्शमात्र से भगवान् महावीर को पित्तज्वर तथा खून के दस्त (पेचिश) होने लग गये। यह देखकर प्रजा को तथा अनेक साधुओं को बहुत चिन्ता हो गयी और सर्वत्र यह बात फैल गयी कि भगवान् महावीर छः मास में देह त्याग देंगे। जिसको प्रभु पर अत्यन्त राग था ऐसा सिंह नाम का अणगार (जैन श्रमण) जो जंगल में ध्यान कर रहा था, उसने भी वहाँ यह बात सुनी। वह दुःखी होकर फूट फूट कर रोने लगा। भगवान ने अपने ज्ञान द्वारा इस बात को जान कर सिंह मुनि को दूसरे साधु द्वारा अपने पास बुलाया और उसे सान्त्वना दी। जनता तथा मुनिजनों की चिन्ता को दूर करने के लिए भगवान ने सिंह मुनि से कहा—

हे सिंह! तुम मेंढिक ग्राम नगर में जाओ, वहाँ गृहपति की पत्नी रेवती ने दो पाक तैयार किए हुए हैं। उनमें एक मेरे लिए बनाया है तथा दूसरा अपने घर के लिये बनाकर रखा हुआ है। जो पाक मेरे लिए बनाया है उससे प्रयोजन नहीं (यह मत लाना)। परन्तु जो दूसरा उसने अपने लिए बनाकर रखा हुआ है उसे ले आओ।

भगवान ने वह पाक आसक्ति से रहित होकर खाया और पीड़ा शांत हुई।

यहाँ उपयुक्त दो पाठों के लिए जो मतभेद दिखलाया गया है उनके बारे में किसी को भी आपत्ति नहीं है वे तो सबको मान्य हैं। परन्तु उन शब्दों के अर्थ में मतभेद है। ये शब्द विवादास्पद हैं इसलिए इनका यथार्थ करके इनका निर्णय करने की आवश्यकता है।

(२)

विवादास्पद सूत्रपाठ और उसके अर्थ के लिये जैन विद्वानों के मत

सूत्र में वर्णित मूल पाठ

"तं गच्छह णं तुमं सीहा! मेंढियगामं नगरं रेवतीए गाहावतिणीए गिहं तत्थ णं रेवतीए गाहावइणीए मम अट्ठाए दुवे कवोयसरीरा उवक्खडिया तेहिं नो अट्ठो, अत्थि से अन्ने पारियासिए मज्जारकडए कुक्कुडमंसए तमाहराहि एएणं अट्ठो। (भगवती सूत्र शतक १५)

(३)

जैन शास्त्रों में से नवांगों (नौ आगमों) के टीकाकार महान् समर्थ विद्वान आचार्य अभयदेवसूरि ने समस्त अंग सूत्रों पर टीका रची है। स्थानांग-ठाणांग आगम की टीका करते हुए उसके नवम ठाणे में प्रभु महावीर के शासन में नव ( ) जीवों ने तीर्थंकर नामकर्म बाँधा इसका वर्णन आया है। उन नौ जीवों ने किस किस कारण से तथा कर्म करने से तीर्थंकर नामकर्म उपार्जन किया ऐसा पाठ है[1] उसमें रेवती गाथापति का नाम रेवती भी आया है। उपयुक्त विवादास्पद आहार प्रभु को देने के कारण रेवती ने तीर्थंकर नामकर्म का बंध किया था ऐसा पाठ है। उस प्रसंग का उल्लेख करते हुए नवांगी टीकाकार अभयदेवसूरि ने इस विवादास्पद सूत्रपाठ का इस प्रकार अर्थ किया है —

'तस्मा गच्छ त्वं नगरमध्ये तत्र रेवत्यभिधानया गृहपतिपत्न्या मदर्थं

1—इस पाठ का उल्लेख हम आगे करेंगे।

द्वे कूष्माण्डफलशरीरे उपस्कृते न च ताभ्यां प्रयोजनं, तथाऽन्यदस्ति तद्गृहे परिवासितं मार्जाराभिधानस्य वायोर्निवृत्तिकारकं कुक्कुटमांसक—बीजपूरककटाहमित्यर्थः तदाहर तेन न प्रयोजनमिति ।"

(ठाणांग सू० १९१)

अर्थात्— तुम नगर में जाओ रेवती नाम की गृहपति की भार्या ने मेरे लिए दो कूष्माण्ड फल (पेठे) संस्कार करके तैयार किये हैं, उनका प्रयोजन नहीं परन्तु उसके घर में मार्जार नामक वायु की निवृत्ति करने वाला बीजौरे फल का गर्भ है वह ले आओ। उसका मुझे प्रयोजन है। (ठाणांग सूत्र में १ ’)

इस उपर्युक्त अर्थ में यह बात स्पष्ट है कि ठाणांग जी सूत्र में इन शब्दों का अर्थ श्रीअभयदेवसूरि ने स्पष्ट रूप से वनस्पतिपरक किया है इसलिए यही अर्थ यथार्थ रूप में उन्हें मान्य था।

(ख)

इन्हीं टीकाकार आचार्य अभयदेवसूरि ने ठाणांगजी की टीका लिखने के बाद पंचमांग भगवती जी सूत्र की टीका वि० सं० ११२८ में लिखी। इसमें गोशालक के प्रसंगवाले पन्द्रहवें शतक में भी जो उन्हें स्वयं मान्य अर्थ था वही किया। किन्तु एक निष्पक्ष टीकाकार होने के नाते उनके समय में कोई कोई व्यक्ति इन शब्दों में से स्थूल दृष्टि से फलित होने वाले प्राणीवाचक अर्थ भी मानते होंगे अतः वर्तमान के लिए उन्होंने यह बात भी अपनी टीका में लिखी। ऐसा लिखते हुए भी यह बात उन्हें स्वयं मान्य नहीं थी। यदि यह बात उन्हें मान्य होती तो वे "श्रूयमाणमेवार्थं केचिन्मन्यन्ते"—ऐसा न लिखते किन्तु इस अर्थ की चर्चा करके स्पष्ट करने की चेष्टा करते। न तो उन्होंने ऐसी कोई चर्चा की है और न ही ऐसा अर्थ किया है। इससे यह स्पष्ट है कि उन्हें स्वयं इन शब्दों का अर्थ प्राणीवाचक मान्य नहीं था यह निश्चित है। उन्हें स्वयं जो अर्थ मान्य था उसी का उल्लेख उन्होंने ठाणांग जी में किया

है तथा यहाँ भी यथा गो अर्थ किया है। इसलिए वनस्पतिपरक अर्थ ही वास्तविक है।

श्री भगवती सूत्र के विवादास्पद सूत्रपाठ की टीका

"दुवे कवोया" इत्यादे—श्रूयमाणमेवार्थ केचिन्मन्यन्ते । अन्ये त्वाहु कपोतक—पक्षिविशेषस्तद्वद् ये फले वर्णसाधर्म्यात्ते कपोते कूष्माण्डे ह्रस्व कपोते कपोतके ते च ते शरीरे वनस्पतिजीवदेहत्वात् कपोतकशरीरे अथवा कपोतकशरीरे इव धूसरवर्णसाधर्म्यादिव कपोतक-शरीरे कूष्माण्डफले एव ते उपस्कृते-संस्कृते 'तेहिं नो अट्ठो' त्ति बहु पापत्वात्। 'पारिआसिए' त्ति परिवासित ह्यस्तनमित्यर्थ इत्यादेरपि केचित् श्रूयमाणमेवार्थ मन्यन्ते । अन्ये त्वाहु —'मज्जारकडए' मार्जारो वायुविशेषस्तदुपशमनाय कृत संस्कृत मार्जारकृत अपरे त्वाहु —मार्जारो-विरालिकाभिधानो वनस्पतिविशेषस्तेन कृत—भावित यत्तथा कि तत ? इत्याह— कुक्कुटकमांसक' बीजपूरक कटाहम 'आहराहि' त्ति निरवद्य त्वादिति।

अर्थात—इस लिए हे सिंह ! तुम मढिक ग्राम नाम के नगर में गृहपति की भार्या रेवती के घर जाओ। वहाँ उस ने मेरे लिए (कोई-कोई दुवे कवोय शरीरा का प्राणीपरक अर्थ भी मानते हैं परन्तु अर्थ यह है कि) दो कुष्माण्ड फल (पेठे के फल) तयार किए हैं उन से मुझे प्रयोजन नहीं क्या कि इस लाना बहुत दोष का कारण है (निग्रंथ श्रमण के निमित्त जो आहार तयार किया जाता है एसा आहार जैन साधु को लेना नहीं कल्पता इस लिए एसा आधाकर्मी पेठे का पाक जो श्रमण भगवान महावीर के निमित्त बनाया गया था उस लाने के लिए मना कर दिया) परन्तु इस के इलावा दूसरा जो पाक उन्होंने अपने लिए पहले का बना कर रखा हुआ है वह मज्जारकडए (इस के लिए भी एसा सुना है कि कोई-कोई इस का प्राणीपरक अर्थ मानते हैं परन्तु अर्थ यह ... ऐसा भी

माजार नामक वायु का शान्त करने वाला अन्य आचार्यों का कहना है कि विरालिका नामक वनस्पति से भावना किया हुआ बीजोरापाक है उस को लाओ उस से मुझे प्रयोजन है।

श्रीअभयदेवसूरि ने इस उपर्युक्त पाठ (वृत्ति) में लिखा है कि सुनते हैं कि कई लोग दुवे कवोयसरीरा और मज्जारकडए कुक्कुड मंसए का अर्थ प्राणीपरक करते हैं। इस से यह बात तो स्पष्ट है कि अन्य जैनाचार्य और उस समय के आम विद्वान इन शब्दों का अर्थ वनस्पतिपरक करते थे और यही अर्थ आचार्य श्रीअभयदेवसूरि को भी मान्य था। हमारी इस धारणा की पुष्टि (१) ठाणांग सूत्र का गाथापति की भार्या रेवती के परिचय में मूल पाठ की टीका है। (२) इस पाठ से भी स्पष्ट है कि कई-कई ऐसा अर्थ भी करते हैं। यदि उन का अपना भी यही मत होता तो वे सुना है ऐसा न लिख कर इन शब्दों का प्राणीपरक अर्थ करके वनस्पतिपरक अर्थ के साथ श्रूयमाणमेवार्थं लिखते। इस से भी यही सिद्ध होता है कि आचार्य अभयदेव को भी वनस्पतिपरक अर्थ ही मान्य है। (३) इस पाठ के विषय में इन शब्दों का मांसपरक अर्थ किसी भी अन्य उपलब्ध टीकाओं में नहीं मिलता। (४) इन शब्दों के अर्थ वनस्पतिपरक ही होना चाहिये और यही अर्थ ठीक है इस विषय की पुष्टि के लिये हम अन्य जैनाचार्यों के मत भी दे देना उचित समझते हैं।

(ग)

विक्रम संवत् ११४१ पाटण में कर्णदेव के राज्य समय में जैनाचार्य नेमिचन्द्रसूरि ने प्राकृत भाषा में तीन हजार श्लोकप्रमाण महावीर चरित्र रचना की है जो ग्रंथ आत्मानन्द ग्रंथ रत्न माला ग्रंथ नं० ५८ भावनगर की जैन आत्मानन्द सभा की तरफ से वि० सं० १९७३ में प्रकाशित हुआ है। उसके पत्र ८४ में यह अधिकार गाथा नं० ११ ० से ३५ तक इस प्रकार वर्णन है।

'ता गच्छ तुमं मिंढियगामे मग्गाहि रेवई मज्झ।
गाहावईण कज्जे पज्जसिय ओसह कप्प ॥१९३०॥'

जो देवचन्द लालभाई पुस्तकोद्धार फंड सूरत से प्रकाशित हो चुका है। उसके प्रस्ताव ८ पत्र २८२ २८३ में वर्तमान चर्चास्पद विषय पर प्रकाश डालता हुआ वर्णन है। वहाँ सिंह अणगार की प्रार्थना से कल्प्य औषधि स्वीकार करने के लिए भगवान् महावीर सम्मत होने पर भी अपने निमित्त में तैयार की हुई औषध नहीं कल्पती ऐसी साधुसामाचारी मर्यादा को अपने आचरण में सूचित करते हैं।

'जइ एवं ता इहेव नयरे रेवईए गाहावइणीए समीवं वच्चाहि। ताए य मम निमित्तं जं पुव्वं ओसहं उवक्खडियं तं परिहरिऊण इयरं अप्पणो निमित्तं निप्फाइयं आणहि त्ति।

भावार्थ—[हे सिंह!] यदि ऐसा ही है तो इसी नगर में (मेंढिक ग्राम में) रेवती नाम की गृहपत्नि का वस्ती के समीप जा उसने मेरे निमित्त जो पहले औषध तैयार की हुई है उसे छोड़ कर दूसरी (औषध) जो उस ने अपने लिये तैयार की हुई है वह ले आना। भगवान महावीर के लिये औषधदान देने से [illegible] की देवगति हुई इत्यादि यहाँ विस्तृत वर्णन है।

(ग)

व्याकरण। संस्कृत प्राकृत शब्दानुशासन काव्य न्याय साहित्य रचने वाले सुप्रसिद्ध कलिकालसर्वज्ञ आचार्य श्री हेमचन्द्र ने विक्रम की तेरहवीं शताब्दी में त्रिषष्टिशलाकापुरुषचरित्र महाकाव्य रचा है जिसके दसवें पर्व में लगभग छ हजार श्लोकप्रमाण भगवान महावीर का चरित्र है। यह ग्रन्थ भावनगर से जैनधर्म प्रसारक सभा ने विक्रम संवत १९६५ में प्रकाशित किया है। उसके आठवें सर्ग के श्लोक ५४१, से ५५२ में चालू चर्चास्पद विषय पर स्पष्ट प्रकाश डाला है।

> मा कुर्वा दुःखशास्य तत स्वामिनादस्य भवजम ।
> स्वामिनि पीडिते दृष्टे नहि क्षणमपि क्षमा ॥५४१॥

तस्योपराधात स्वाम्यूच रेवत्या श्रेष्ठिभार्यया।
पक्व कूष्मांडकटाहो यो मह्य त तु मा ग्रही ॥५५०॥
बीजपूरकटाहोऽस्ति य पक्वा गहहतव।
त गहीत्वा समागच्छ करिष्ये तेन वो धतिम ॥५५१॥
सिहोऽगादथ रेवतीगहमुपादत्त प्रदत्त तया
कल्प्य भयजमाशु तत्र ववये स्वण च वृष्ट सुर।
सिहानीतमपास्य भपजवर तव वधमान प्रभु,
सद्य सयचकारपार्वणगनी प्रापद् वपु पाटवम ॥५५२॥

भावार्थ—[भक्तिमान सिंह अनगार न कहा] हे स्वामिन! हमारे जनों के दुःख की शान्ति के लिये तो आप भयज ग्रहण करें, क्योंकि मेरे जनों से (सकल सकल स) स्वामी का क्षणभर भी पान्ति नहीं देखा जाता। उसके अनन्तर स्वामी न (भगवान महावीर न) कहा कि—सेठ की भार्या रेवती न मेरे लिये ही कुष्माण्डकटाह (पेठ का पाक) बनाया है, उसे मत लाना। किन्तु उसने अपने घर के लिये जो बीजपूर कटाह (बीजोरा पाक) बनाया है उसे ले आओ। उसके द्वारा तुम्हें धृति—धीरज प्राप्त होगा। तत्पश्चात सिंह (मुनि) रेवती श्राविका के घर गया तथा उसके द्वारा दिये गये कल्प्य उस भयज (औषध) को भगवान् ने स्वीकार किया। वहाँ हर्षित हुए देवों ने शीघ्र ही स्वर्ण वृष्टि की। सद्य रूपी चकोर को उन्मीलित करने के लिये चन्द्रमा के समान वर्धमान प्रभु (भगवान महावीर) ने सिंह के द्वारा लाये हुए उस भेषज का सेवन किया। तत्पश्चात शीघ्र ही शरीर की स्वस्थता प्राप्त की।

इन उपर्युक्त उद्धरणों से यह बात स्पष्ट है कि श्रमण भगवान महावीर स्वामी ने वनस्पति से तैयार की गयी औषध को ही अपने रोग की शान्ति के लिये सेवन किया था। इस विवेचन में दिये गये क ख ग घ उद्धरणों के लेखक विक्रम की बारहवीं शताब्दी के समकालीन हैं तथा

ङ च० ... ० १४। शताब्दी के हैं। इससे

समय के सभी जन आचार्य इस औषधिदान को वनस्पतिपरक ही मानते थे। इस बात की पुष्टि के लिये और भी अनेक उल्लेख मिलते हैं। परन्तु विस्तारभय से इतने प्रमाण देना ही पर्याप्त हैं। सुज्ञेषु किं बहुना ?

इस विवेचन से यह भी स्पष्ट है कि जैनाचार्य हजारों वर्षों से इन शब्दों का अर्थ 'वनस्पतिपरक' ही करते आये हैं। अतः निगंठ नायपुत्त (श्रमण भगवान महावीर) ने अपने रोग की शान्ति के लिये अथवा अन्य भी किसी समय मांसाहार कदापि ग्रहण नहीं किया। भगवान् महावीर के विषय में भगवती सूत्र के इस एक उल्लेख के अतिरिक्त अन्य कोई भी ऐसा उल्लेख जैनागमों अथवा जैन साहित्य में नहीं पाया जाता जिससे उनके विषय में मांसाहार करने की आशंका का होना संभव हो। इस चर्चास्पद सूत्रपाठ से भी यह बात स्पष्ट है कि इन शब्दों का अर्थ मांसपरक नहीं किन्तु वनस्पतिपरक है।

(२)

इस औषधदान पर दिगम्बर जैनों का मत

दिगम्बर जैन सम्प्रदाय के विद्वान भी रेवती (मेढिक ग्राम वाली) के इस औषधदान की भूरि भूरि प्रशंसा करते हैं। रेवती ने जो तीर्थंकर नामकर्म उपार्जन किया, उसका कारण भी यह औषधदान ही था ऐसा कहते है। वह लेख यह है।

"रेवतीश्राविकया श्रीवीरस्य औषधदानं दत्तम्। तेनौषधिदान कालेन तीर्थकरनामकर्मोपार्जितमत एव औषधिदानमपि दातव्यम्।"

(हिन्दी जैन साहित्य प्रसारक कार्यालय बम्बई का जैन चरितमाला नं० ६)

अथ—रेवती श्राविका ने श्रमण भगवान महावीर स्वामी को औषध दान दिया। इस औषधदान देने से उसने तीर्थंकर नामकर्म उपार्जन किया। अतः औषधदान भी देना चाहिये।

इस उपर्युक्त उल्लेख में भी यह स्पष्ट है कि जैनधर्म के किसी भी सम्प्रदाय अथवा विभाग को इस औषध दान के विषय में—फिर वह चाहे श्वेताम्बर हो अथवा दिगम्बर—कोई मतभेद नहीं है। सभी को यह बात मान्य है कि यह औषध वनस्पति से ही तैयार की गयी थी।

( )

जैन तीर्थंकर का आचार

जो जीव तीर्थंकर होते हैं वे तीर्थंकर होने से तीन भव पहले बीस स्थानक अथवा सोलह कारण (बीस प्रकार के कृत्य जिनका समावेश सोलह कारणों में होता है) की आराधना करके तीर्थंकर नामकर्म का बंध करते हैं। वहाँ से काल करके (मृत्यु पाकर) प्राय स्वर्ग में उत्पन्न होते हैं। वहाँ से काल करके मनुष्य क्षेत्र में बहुत भारी समृद्धि और परिवार वाले उत्तम शुद्ध राज्य कुल में जन्म लेते हैं। तीर्थंकर होने वाले इन जीवों को माता के गर्भ में ही असाधारण तीन ज्ञान मति श्रुत अवधि होते हैं। इनका शरीर वज्रऋषभनाराचसंहनन वाला होता है (वज्र के समान दृढ़ होता है) इनकी आयु अनपवर्तनीय (किसी घातादि के निमित्त से क्षय न होने वाली) होती है। वे महानुभाव संसार की मोह माया ममता का सर्वथा त्याग कर देते हैं। अपनी दीक्षा का समय तीर्थंकर के जीव अपने ज्ञान से भी जान लेते हैं। इनका गृहस्थ जीवन भी प्राय अनासक्त होता है। दीक्षा लेने से एक वर्ष पहले एक वर्ष तक दान देकर, यदि माता पिता विद्यमान हों तो उनकी आज्ञा लेकर वह महाभाग पूर्व स्वयमेव दीक्षा ग्रहण करते हैं। किसी को गुरु नहीं बनाते क्योंकि वे तो स्वयं ही त्रिलोकी के गुरु होने वाले होते हैं और ज्ञानवान हैं।

सब प्रकार के पापजन्य मानसिक-वाचिक कायिक व्यापारों का त्याग कर महान् अद्भुत तप करते हैं जिससे चार घाती कर्मों का क्षय करके केवल ज्ञान प्राप्त कर वे सर्वज्ञ सर्वदर्शी होते हैं फिर संसारतारक उपदेश देकर धर्मतीर्थ की स्थापना करते हैं। ऐसे महापुरुष तीर्थंकर होते हैं।

तीर्थंकर भगवान बदले के उपकार की इच्छा न रखते हुए राजा रंक ब्राह्मण से चाण्डाल पर्यन्त सब प्रकार के योग्य नर नारियों को एकान्त हितकारक, संसारसमुद्र से तारक धर्मोपदेश देते हैं।

तीर्थंकर भगवान के गुणों का पारावार नहीं उनके गुण अपार हैं। अतः सबका वर्णन करना असंभव है फिर भी यहां संक्षेप में कुछ गुणों का उल्लेख किया जाता है।

१ अनन्त केवलज्ञान, २ अनन्त केवलदर्शन ३ अनन्त चारित्र ४ अनन्त तप ५ अनन्त वीर्य ६ पांच अनन्त (दान लाभ भोग उपभोग तथा वीर्य) लब्धियां ७ क्षमा ८ संतोष ९ सरलता, १० निरभिमानिता ११ लाघवता १२ सत्य १३ संयम १४ इच्छारहितपन १५ ब्रह्मचर्य १६ दया (जीवहिंसा का नवकोटिक त्याग) १७ परोपकारिता १८ वीतरागता (राग-द्वेष रहितता) १९ शत्रु मित्रभाव रहित २० स्वर्णपाषाणादि समभाव २१ स्त्री-पुरुष पर समभाव २२ मांसाहार रहित २३ मदिरापान रहित २४ अभक्ष्य (न खाने-पीने योग्य पदार्थ) भक्षण रहित २५ अगम्यगमन रहित २६ करुणा के समुद्र २७ शूर २८ वीर २९ धीर ३० अनुपम ३१ पर निन्दा रहित ३२ अपनी स्तुति न करे ३३ अपने विरोधि को भी तारने वाले इत्यादि।

(१) मोहनीय (२) ज्ञानावरणीय, (३) दर्शनावरणीय (४) अन्तराय इन चार घातिया कर्मों के क्षय करने के कारण १८ दोषों से रहित होते हैं।

"अन्तराया दान लाभ-वीर्य भोगोपभोगगा,
हासो रत्यरती भीतिर्जुगुप्सा शोक एव च॥

धयावृत्य करना (गणवान या कठिनाई म से निकालना)। १० ११ १२ १३—अरिहन, आचाय बहुश्रुत और शास्त्र के प्रति शुद्ध निष्ठापूर्वक अनुराग रखना। १४ आवश्यक क्रिया को न छोड़ना (सामायिकादि छ आवश्यकों का पालन करना)। १५ मोक्षमार्ग की प्रभावना (आत्मा के कल्याण के मार्ग को अपने जीवन म उतारना तथा दूसरों को उसका उपदेश देकर धर्म का प्रभाव बढ़ाना)। १६ प्रवचनवात्सल्य (वीतराग वचन के वचनों पर स्नेह—आन्तर अनुराग होना)।

इन उपयुक्त कार्यों म स एक अथवा अधिक कार्यों का करने से जीव तीर्थंकर पद को प्राप्त करने योग्य कर्म का बंधन करता है। इस कर्म का नाम है तीर्थंकर नामकर्म।

बीस स्थानकों का वर्णन नायाधम्म कहाओ आदि आगमों म—

अरिहंत सिद्ध पवयण-गुरु थेर बहुस्सुए-तवस्सीसु।
वच्छल्लया य तेसिं अभिक्खणाणोवओगे य ॥१॥
दसण विणए आवस्सए य सीलव्वए निरइयारे।
खणलव तवच्चियाए वेयावच्च समाहीए य ॥२॥
अप्पुव्वणाण गहणे सुयभत्ती पवयण पभावणया।
एएहिं कारणेहिं तित्थयरत्त लहइ जीवो ॥३॥

(ज्ञाताधर्म कथांग अ० ८ सूत्र ६४)

अर्थात—१—अरिहंतभक्ति २—सिद्धभक्ति ३—प्रवचनभक्ति, ४—स्थविर (आचार्य) भक्ति ५—बहुश्रुतभक्ति ६—तपस्वी वत्सलता, ७—निरन्तर ज्ञान म उपयोग रखना ८—दर्शन (सम्यक्त्व) को शुद्ध रखना ९—विनय सहित होना १०—सामायिक आदि छ आवश्यकों का पालन करना ११—अतिचार रहित शील और व्रतों का पालन करना १२—संसार को क्षणभंगुर समझना १३—शक्ति अनुसार तप करना, १४—शक्ति अनुसार त्याग (दान) करना १५—शक्ति अनुसार चतुर्विध संघ की तथा साधु की समाधि करना, (ऐसा करना जिसमे वे

स्वस्थ रहें) १६—वैयावृत्य करना (गुणवान व्यक्ति कठिनाई में पड़े हों तो उन्हें कठिनाई में से दूर करने का प्रयत्न करना), १७—अपूर्व (नये नये) ज्ञान का ग्रहण करना, १८—शास्त्र में भक्ति होना १९—प्रवचन में भक्ति होना २०—तीर्थंकर के सिद्धान्तों का प्रचार करना। इन कारणों से जीव तीर्थंकर नामकर्म का बंधन करता है।

तत्त्वार्थसूत्र में १६ कारण तथा आगम-ज्ञाताधर्म कथांग में २० कारण तीर्थंकर नामकर्म बांधने के दिये हैं। दोनों में किसी भी प्रकार का भेद नहीं है। सूत्रकार ने नं० १० ११ १२ १३ में अरिहन्त-आचार्य-बहुश्रुत-शास्त्र को आगम ने १ २ ३ ४ ५ ६-७ अरिहन्त-सिद्ध-प्रवचन-आचार्य-स्थविर-बहुश्रुत-तपस्वी इस प्रकार विस्तार में ज्ञान भेद कर दिये हैं। इसी प्रकार आगमकार ने १७ १८ अपूर्व ज्ञान को ग्रहण करना तथा शास्त्रभक्ति ये भेद किये हैं जबकि सूत्रकार ने शास्त्रभक्ति में इन दोनों का समावेश करके १६ भेद कर दिये हैं।

तीर्थंकर नामकर्म के उपार्जन करने के लिए जो जो भावनाएं बतलाई गयी हैं उन सब भावनाओं में सूत्रकार ने दर्शनविशुद्धि को सब प्रथम रखा है। इससे यह बतलाया है कि इन सोलह अथवा बीस भावनाओं में से दर्शनविशुद्धि मुख्य है। इसके अभाव में दूसरी सब भावनाएं होने पर भी तीर्थंकर नामकर्म का उपार्जन नहीं हो सकता और इसके सद्भाव में दूसरी भावनाएं हों अथवा न हों तो भी तीर्थंकर नामकर्म का उपार्जन हो सकता है। (अर्थात्—यदि जीव को जिनोपदिष्ट धर्म में सच्चा अनुराग हो तो ही तीर्थंकर गोत्र का आस्रव होना सम्भव है)।

शास्त्रों में तीर्थंकर नामकर्म के आस्रव के उपर्युक्त दर्शनादि अलग अलग कारण जो बतलाये हैं उनका अभिप्राय यही है कि जीव सम्यग्दर्शन[1]

१—नादंसणिस्स नाणं नाणेण विणा न हुंति चरणगुणा।
अगुणिस्स नत्थि मोक्खो नत्थि अमोक्खस्स निव्वाणं॥
(उत्तराध्ययन अ० २८ सू० ३०)

को प्राप्त करने के पश्चात् बीस अथवा सोलह भावनाओं में से किसी भी एक-दो अथवा अधिक भावनाओं के द्वारा तीर्थंकर नामकर्म का उपार्जन कर सकता है। सम्यग्ज्ञान के अभाव में मिथ्यादृष्टि अन्य किन्हीं भी भावनाओं का आचरण में लाता हुआ कदापि तीर्थंकर नामकर्म उपार्जन नहीं कर सकता।

तीर्थंकर भगवान् का संक्षिप्त आचार तथा विचार जानने के लिए देखें प्रथम खण्ड में स्तम्भ नं० ४ से ७ तक। इन सब स्तम्भों को पढ़ने से पाठक स्वयं जान सकेंगे कि तीर्थंकरत्व सर्वज्ञ-सर्वदर्शी भगवान् महावीर स्वामी के आचारों तथा विचारों का अवलोकन करने से यह बात स्पष्ट है कि वे कभी भी मांसाहार का ग्रहण नहीं कर सकते थे।

निर्ग्रंथ श्रमण (मुनि) तथा निर्ग्रंथ श्रमणोपासक (श्रावक) का आचार

इस निबंध के प्रथम खंड में स्तम्भ नं० ३ से ७ तक हम स्पष्ट कर चुके हैं कि १—जैन तीर्थंकर के आचार २—निर्ग्रन्थ श्रमण, तथा ३—निर्ग्रंथ श्रावक-श्राविकाओं (दोनों) के आचार विचार से यह बात स्पष्ट है कि जैन दर्शन तथा आचार को सम्यग्ज्ञान पूर्वक चारित्र में उतारने वाला कोई भी व्यक्ति—फिर वह चाहे तीर्थंकर हो श्रमण हो अथवा व्रतधारी श्रावक हो—कदापि मत्स्य मांस मदिरा आदि पदार्थों का सेवन नहीं कर सकता। इन पदार्थों को जैनागमों में अभक्ष्य कहा है और इन अभक्ष्य पदार्थों के भक्षण का सर्वथा निषेध किया है। इनका औषध रूप में भी तीर्थंकर अथवा निर्ग्रन्थ श्रमण प्रयोग नहीं कर सकते।

इस औषध को सेवन करने वाले, औषध लाने वाले तथा औषध बनाने और देने वालों का जीवन परिचय

१—वीतराग सर्वज्ञ सर्वदर्शी तीर्थंकर भगवान् वर्धमान महावीर स्वामी ने रक्त पित्त (पेचिश) तथा पित्तज्वर की व्याधि को मिटाने के लिए इस औषध का सेवन किया। २—प्रिय श्रमण सिंह ने यह औषध लाकर दी। ३—रेवती श्राविका ने इस औषध को अपने घर के लिए बनाया और सिंह मुनि को भगवान महावीर के रोगशमन के लिए प्रदान किया।

१—सर्व प्रथम श्रमण भगवान महावीर के सम्बन्ध में विचार करते हैं—

भगवान महावीर गौतम बुद्ध के समकालीन थे। दोनों श्रमण सम्प्रदाय के समर्थक थे। फिर भी दोनों के अंतर को जाने बिना हम उनके आचार विचार सम्बन्धी किसी नतीजे पर नहीं पहुंच सकते।

(क) पहला अंतर तो यह है कि बुद्ध ने महाभिनिष्क्रमण से लेकर अपना नया मार्ग धर्मचक्र प्रवर्तन किया, तब तक के छः वर्षों में उस समय प्रचलित भिन्न भिन्न तपस्वी और योगी सम्प्रदायों का एक एक करके स्वीकार परित्याग किया। अन्त में अपने विचारों के अनुकूल एक नया ही मार्ग स्थापित किया जबकि महावीर को कुलपरम्परा से जो धर्म-मार्ग प्राप्त था वह उसे लेकर आगे बढ़े और उस धर्म में अपनी सहजिक विशिष्ट सामर्थ्य और देश व कालकी परिस्थिति के अनुसार सुधार या शुद्धि की। बुद्ध का मार्ग नया धर्म-स्थापन था तो महावीर का मार्ग प्राचीन काल से चले आते हुए जैनधर्म का पुनरुसंस्कार करने का था।

(ख) बुद्ध ने बुद्धत्व की प्राप्ति से पहले [illegible] के अनुसार तपश्चर्या की बाद में इसका खण्डन कर उन्होंने [illegible] और तत्पश्चात् बुद्धत्व प्राप्ति [illegible] था। तब उन्होंने नियमों के नवप्रयोग आचारों की [illegible] कड़ी आलोचना भी की। भगवान महावीर के [illegible] महाराजा चरक आदि तापस [illegible] भगवान् पार्श्वनाथ के [illegible] भगवान् महावीर का नियम [illegible] कहीं भी नियमों के मौलिक आधार एवं तत्त्वज्ञान को [illegible] नहीं था है। प्रमुख नियमों के परम्परागत [illegible] अपनाकर अपने जीवन के द्वारा उन की [illegible] किया है।

बाध्य होना पड़ा जिससे उनके जीवन में न तो यथावत संयम ही रहा और न तप ही रहा। जिसके परिणाम स्वरूप वे अहिंसा तत्त्व से अधिकाधिक दूर होते गये।

परन्तु महावीर का तप शुष्क तपस्या नहीं था। वे जानते थे कि यदि तप के अभाव से सहनशीलता न हुई तो दूसरों की सुख-सुविधा की आहुति देकर अपनी सुख सुविधा रखने की लालसा बढ़ेगी और उसका फल यह होगा कि संयम न रह पायेगा। इसी प्रकार संयम के अभाव में कोरा तप भी [illegible] की तरह दिखता है।

(ङ) ज्यों ज्यों भगवान महावीर संयम और तप की उत्कृष्टता से अपने आप को निखारते गये त्यों-त्यों वे अहिंसातत्त्व के अधिकाधिक निकट पहुंचते गये त्यों त्यों उनको गम्भीर शांति मिलने लगी और उसका प्रभाव आसपास के प्राणियों पर अपने आप पड़ने लगा। मानस शास्त्र के नियम के अनुसार एक व्यक्ति के अन्दर बलवान हुए प्राणों व शक्ति का प्रभाव आस पास के प्राणियों पर जाने-अनजाने में हुए बिना नहीं रहता। परन्तु बुद्ध तप और संयम का त्याग देने के कारण अहिंसा तत्त्व को पूर्ण रूप से अपने जीवन में उतारने में असमर्थ रहे। उनका अहिंसा तत्त्व उपदेश मात्र ही बन कर रह गया। परन्तु अपने और अपने अनुयायियों के आचरण में इसे पूर्ण रूप से न उतार सके। अतः इनका यह अहिंसा सिद्धांत थोथा होकर रह गया।

(च) अहिंसा का सार्वभौम धर्म दीर्घ तपस्वी भगवान महावीर में परिस्फुट हो गया था तब उनके सामाजिक जीवन के प्रभाव से मगध और विदेह देश का पूर्वकालीन मलिन वायुमण्डल धीरे-धीरे शुद्ध होने लगा और यज्ञ विहित पशु वध की प्रथा को सदा के लिए देश निकाला मिल गया। माँसाहारियों की संख्या में एकदम कमी होने लगी। जो लोग माँसाहारी थे उनको जन साधारण अवहेलना की दृष्टि से देखने लगे। उस समय के अन्य सम्प्रदायों पर आपके अहिंसा धर्म की गहरी छाप पड़ी

थी। बुद्ध के मध्यम मार्ग का प्रचार पशु-हिंसा को बन्द कराने में सफल तो हुआ परन्तु मांसाहार के प्रचार को न रोक सका और स्वयं भी मांसाहारी बन गया।

(छ) भगवान महावीर ने त्याग और तपस्या के नाम पर रूढ़ शिथिलाचार के स्थान पर सच्चे त्याग और सच्ची तपस्या की प्रतिष्ठा करके भोग की जगह योग के महत्व का वायुमण्डल चारों ओर उत्पन्न किया। परन्तु बुद्ध ने सच्चे त्याग और तप का न समर्थन के कारण इनकी अवहेलना कर स्थान-स्थान पर कड़ी आलोचना की है।

(ज) निग्रंथ तपस्या के खण्डन करने के पीछे बुद्ध का दृष्टि मुख्य यही रही है कि स्थूल यह कायक्लेश है इंद्रिय और देहदमन मात्र है उसके द्वारा दुःख सहन करने का अभ्यास तो बढ़ता है लेकिन उससे कोई आध्यात्मिक शुद्धि और चित्तक्लेश का निवारण नहीं होता इसलिए देहदमन या कायक्लेश मिथ्या है।

भगवान महावीर ने भी यही कहा है कि देहदमन या कायक्लेश कितना ही उग्र क्यों न हो पर यदि उसका उपयोग आध्यात्मिक शुद्धि और चित्तक्लेश के निवारण में नहीं होता तो वह देहदमन या कायक्लेश मिथ्या है।

इस का मतलब तो यही हुआ कि आध्यात्मिक शुद्धि के बिना सम्बन्ध वाली तपस्या भगवान महावीर को भी अभीष्ट नहीं थी।

भगवान् महावीर और बुद्ध की ऐसी समान मान्यता होते हुए भी बुद्ध ने निग्रंथ तपस्या का खण्डन अथवा कड़ी आलोचना क्यों की इसका विचार करना भी जरूरी है।

(झ) अपनी शिथिलता के कारण जब बुद्ध को त्याग और तपमय आचार को त्याग कर अपने आचार विचारों सम्बन्धी नये सुझावों को अधिक-से अधिक लोकग्राह्य बनाने का प्रयत्न करना था तब उनके लिये ऐसा किये बिना नया संघ एकत्र करना और उसे स्थिर रखना असम्भव था।

क्योंकि उस समय निग्रन्थ परम्परा का बहुत प्राधान्य था। उनके तप और त्याग से जनता आकृष्ट होती थी जिससे निग्रन्थों के प्रति उनका अधिक झुकाव व बौद्ध धर्मानुयायियों में आचार की शिथिलता को देखकर वह प्रश्न कर उठती थी कि आप तप का अवहेलना क्या करते है ? तब बुद्ध को अपने शिथिलाचार की पुष्टि के लिये अपने पक्ष की सफाई भी पेश करनी थी और लोगों को अपने मन्तव्यों की तरफ खचना भी था। इस लिये वे निग्रन्थों की आध्यात्मिक तपस्या को केवल कष्टमात्र और देहदमन बतला कर कडी आलोचना करने लगे।

(अ) भगवान महावीर ने जीवात्मा को चेतन्यमय स्वतन्त्र तत्त्व माना है। अनादिकाल से यह जीवात्मा कर्मबन्धनों में जकडी हुई आवागमन के चक्कर में फसी हुई पुन पुन पूर्व देह त्यागरूप मृत्यु तथा नवीन देह प्राप्तिरूप जन्म धारण करती है। जीवात्मा शाश्वत है इसमे चेतना रूप ज्ञानदर्शनमय गुण हैं और कर्मों का क्षय करके शुद्ध पवित्र अवस्था को प्राप्त कर निर्वाण अवस्था प्राप्त कर सदा के लिये जन्ममरणरहित होकर शुद्ध स्वरूप में परमात्मा बन जाती है। अत आत्मा परमात्मा, पाप पुण्य परलोक आदि को मानकर जैन दर्शन ने आत्मा है परलोक है प्राणी अपने शुभाशुभ कर्म के अनुसार फल भोगता है इत्यादि सिद्धान्त स्वीकार किया है। भगवान महावीर के तत्त्वज्ञान का परिचय हम प्रथम खण्ड के पाँचवें स्तम्भ में लिख आये हैं। उससे हमे स्पष्ट ज्ञान होता है कि ऐसे विचार वाला व्यक्ति किसी भी प्राणी का मांस भक्षण नहीं कर सकता।

परन्तु बुद्ध ने क्षण-क्षण परिवर्तनशील मन के परे किसी भी जीवात्मा को नहीं माना। मरने का मतलब है मनका च्युत होना। बौद्ध दर्शन अपने आप को अनात्मवादी और अनीश्वरवादी मानता है। उसका कहना है कि आत्मा कोई नित्य वस्तु नहीं है परन्तु नाना कारणों से स्कन्धों (भूत मन) के ही योग से उत्पन्न एक शक्ति है, जो अन्य बाह्य भूतों की भांति क्षण क्षण उत्पन्न और विलीन हो रही है। चित्त, विज्ञान, आत्मा

गन्ध का बोध है। जिस प्रकार चक्षु, श्रोत्र, जिह्वा, घ्राण और त्वक् इन्द्रियों का हम प्रत्यक्ष अनुभव करते हैं वैसे मन का नहीं। इस मन की सत्ता क्यों स्वीकार करनी पड़ती है? आँख इमली देखती है और जिह्वा में पानी टपकने लगता है। नाक गन्ध सूंघती है और हाथ पर स्पर्श होता है। कान सुनते हैं आँख और जिह्वा एक नहीं हैं न वे एक दूसरे से मिली हुई हैं। इस लिए इन सबों के मिलान के लिए एक सामान्य इन्द्रिय चाहिये और वह है मन। उसके कारण ही चक्षु आदि भिन्न भिन्न इन्द्रियों द्वारा ज्ञात पदार्थ एक दूसरी इन्द्रिय को मालूम हो जाते हैं जिस मन का ... है। इसके पर आत्मा की क्या आवश्यकता? इत्यादि।

(बौद्ध दर्शन—राहुल सांकृत्यायन कृत)

विचार के अनुसार ही आचार होता है। बौद्ध दर्शन मानता है कि आत्मा नहीं है परमात्मा नहीं है। आत्मा नहीं तो स्वर्ग-नरक, पाप-पुण्य, पुनर्जन्म-आवागमन किस का होता है?—इस लिए इनको स्वीकार करना भी स्पष्ट रूप से असम्भव था। इस लिए बुद्ध ने इन सब को अकथनीय कह कर टाल दिया था।

बुद्ध से जब लोग प्रश्न करते थे कि (१) क्या लोक है? (२) क्या लोक अनित्य है? (३) क्या लोक अन्तवान है? (४) क्या लोक अनन्त है? (५) क्या जीव और शरीर एक हैं? (६) क्या जीव दूसरा और शरीर दूसरा है? (७) क्या मरने के बाद तथागत बुद्ध रहते हैं? (८) क्या मरने के बाद तथागत बुद्ध नहीं रहते? (९) क्या मरने के बाद तथागत बुद्ध होते भी हैं नहीं भी होते? (१०) क्या मरने के बाद तथागत न होते हैं न नहीं होते? ये प्रश्न बुद्ध से मालुंक्यपुत्र ने किये थे। यदि भगवान जानते हैं तो बतलायें। यदि नहीं जानते तो न जानने समझने वाले के लिए यही सीधी बात है कि मैं नहीं जानता मुझे मालूम नहीं (म० नि० २/२ ३।१)। बुद्ध ने उत्तर दिया—ये सब अव्याकृत हैं। ... आत्मा-परमात्मा-परलोक आदि

उनका स्वरूप बतलाते।

सम्भवतः बौद्धों में मृत मांस के प्रचार पाने का यही कारण प्रतीत होता है कि उनके धर्म आत्मा को स्वतन्त्र तत्त्व न मान कर पांच स्कन्धों का समूह रूप माना है जिससे कि देहावसान के पश्चात प्राणी के मृत मांस को भक्ष्य मान लिया गया होगा। जो हो।

परन्तु जैन तीर्थंकर भगवान ने प्राणियों के मृत कलेवर को भी असंख्यात कालाणुओं का पुंज मान कर सजीव माना है। और मांस मृत प्राणी के शरीर का होता है फिर चाहे वह प्राणी किसी के द्वारा मारा गया हो अथवा अपने आप मरा हो अतः मांस अनन्त जीवित कालाणुओं का पुंज होने से उसका भक्षण करने से महान हिंसा का पाप लगता है इस लिए जैनदर्शन ने इसे सर्वथा अभक्ष्य मान कर त्याज्य किया है। क्योंकि जैनदर्शन मानता है कि आत्मा है परमात्मा है परलोक है प्राणी अपने शुभ अशुभ कर्म के अनुसार फल भोगता है।

सारांश यह है कि श्रमण भगवान महावीर के पावन और उपदेश का संक्षिप्त रहस्य दो बातों में आजाता है —आचार में पूर्ण अहिंसा और तत्त्वज्ञान में अनेकान्त जिनके द्वारा उन्होंने धार्मिक और सामाजिक क्रान्ति कर भारत पर महान उपकार किया है जो कि भारतवर्ष के सामाजिक जगत में अब तक जागृत अहिंसा संयम और तप के संस्कारों के रूप में जीवित हैं।

भगवान महावीर और महात्मा बुद्ध आत्मसाधना के एक ही पथ के दो पथिक थे। महात्मा बुद्ध अपने पथ से भटक गये और भगवान महावीर उस पथ को पार कर सफलता प्राप्त कर गये।

२—भगवान महावीर को आज्ञा से औषध लाने वाले का आचार।

इस औषध को लाने की आज्ञा देने वाले श्रमण भगवान महावीर हैं और लाने वाले पांच महाव्रतधारी महान तपस्वी मुनि श्री सिंह हैं जो मनसा-वाचा-कर्मणा हिंसा तथा मांस भक्षण के विरोधी हैं (देख निर्ग्रन्थ श्रमण का आचार स्तम्भ न० ३ में) स्वयं अहिंसा के महान उपदेशक तथा स्वयं उसे आचरण में लाने वाले भी हैं। यदि उपदेशक किसी सिद्धान्त का

उपदेश तो करे किन्तु उसे अपने आचरण में न उतारे तो उस सिद्धान्त का और उस सिद्धान्त के प्रचारक का जनसमाज पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता [गौतम बुद्ध ने अहिंसा का प्रचार तो किया किन्तु स्वयं मांसाहार का त्याग नहीं किया फलतः आज भी बौद्ध धर्मावलम्बियों में मांसाहार प्रायः सर्वत्र प्रचलित है]। इस लिए आप है कि भगवान महावीर ने अहिंसा का उपदेश दिया और साथ ही जीवन में भी उसे उतारकर अहिंसा का पूर्णरूपेण पालन किया। फलतः आज भी जैन समाजावलम्बियों में मत्स्य मांस मदिरा आदि अभक्ष्य पदार्थों का सेवन पूर्ण रूप से त्याज्य है।

जैन तीर्थंकरों तथा निर्ग्रन्थ श्रमणों के आचारों का समग्र रूप से यह स्पष्ट हो जाता है कि ऐसी आत्म अहिंसा के उपदेशक तथा प्रतिपालक सिंह नामक निर्ग्रन्थ श्रमण मांसाहार न तो ला ही सकते थे और न ही श्रमण भगवान महावीर उस मांस को खाना ही स्वीकार करते थे।

३–औषध बनाने तथा देने वाली रेवती श्राविका का व्यवहारिक जीवन

मुनि सिंह उस औषध को किसी कसाई अथवा मांसविक्रेता से नहीं लाये थे और न ही किसी मांसाहारी के यहां से लाये थे। वह तो उस एक उत्कृष्ट जैन श्राविका (श्रमणोपासिका) के घर से लाये थे, जिसका नाम था रेवती जो कि एक धनाढ्य सेठ की भार्या थी।

इस रेवती का वर्णन प्राचीन जैनागम शास्त्रों में इस प्रकार पाया जाता है।

१—"समणस्स भगवओ महावीरस्स सुलसा रेवई पामुक्खाणं समणोवासियाणं तिन्नि सयसहस्सीओ अट्ठारस सहस्सा उक्कोसिया समणोवासियाणं संपया हुत्था" (श्री कल्प-सूत्र वीर चरित्र)

२— तएणं तीए रेवतीए गाहावइणीए तेणं दव्वसुद्धेण जाव-दाणेणं सीहे अणगारे पडिलाभिए समाणे देवाउए निबद्धे, जहा विजयस्स जाव जम्म-जीवियफले रेवती गाहावइणीए।'

(भगवतीसूत्र शतक १५)

३—'समणस्स णं भगवतो महावीरस्स तित्थंसि सव्वेहिं जीवेहिं तित्थय-

रणाम मोत्ते ण बम्मे निव्वतिते (१) सेणितेण, (२) सुपासेण, (३) उदातिणा (४) पाट्टिलेण अणगारेण (५) बढाउणा, (६) सखेण, (७) सतगेण, (८) सुलसाए, (९) साविकाते रेवतीते"।

(ठाणांग सूत्र सू० ६९१)

श्रीअभयदेवसूरिकृत टीका —

"तथा रेवती भगवत औषधदात्री रेवती च बहुमान कृतापमात्मान मन्यमाना यथायाचित तत्पात्रे प्रक्षिप्तवती। तेनाप्यानाय तद भगवतो हस्ते विसष्ट । भगवतापि वीतरागतयवादरकोष्ठे निक्षिप्त, ततस्तत्क्षणमेव क्षीणो रोगो जात (ठाणांग सूत्र पाठ की टीका)

अर्थात—१—श्रमण भगवान महावीर की सुलसा रेवता प्रमुख तीन लाख अठारह हजार श्राविकाओं की उत्कृष्ट संख्या थी।

२—उत्तम गृहपति की भार्या रेवता श्राविका ने सिंह अनगार को शुद्ध द्रव्य दान देने से देवायु का बंध किया और जन्म मरण रूप संसार का भी अंत किया (मोक्ष प्राप्त करेगा)

३—श्रमण भगवान महावीर के जीवनकाल में उनके तीर्थ में नौ प्राणियों ने तीर्थंकर नामगोत्र का बंध किया। जिनके नाम हैं—(१) श्रेणिक (२) सुपार्श्व (३) उदायी (४) पोट्टिल अनगार (५) दृढायु (६) शंख (७) शतक (८) सुलसा तथा (९) श्राविका रेवती।

इन में से श्राविका रेवती जो कि (निग्गंठ नायपुत्त) श्रमण भगवान् महावीर को औषध दान देने वाली थी। उस औषध दान देने के कारण उसने तीर्थंकर नामकर्म का उपार्जन किया—यानी जिस कर्म के प्रभाव से अगले जन्म में वह तीर्थंकर पद प्राप्त करके मोक्ष प्राप्त करेगी। तथा रेवती श्राविका ने अपने आप को कृतार्थ मानते हुए सिंह मुनि (अनगार) के द्वारा मांगा गई औषध को मुनि के पात्र में डाल दिया। उस मुनि ने भी (वह औषध) ला कर भगवान के हाथ में रख दी। श्रमण भगवान महावीर ने भी वीतरागता पूर्वक उसे खाया और उन का रोग शांत हुआ।

इस तीर्थंकर नामकर्म उपार्जन करने के लिये सोलह अथवा बीस भावनाओं का उल्लेख कर आये हैं। श्राविका रेवती का जीवनचर्या का अवलोकन करने से इन भावनाओं में से निम्न लिखित भावनाओं का सद्भाव उस दान समय उस में था ऐसा स्पष्ट प्रतीत होता है—

१—दर्शन विशुद्धि २—अर्हत भक्ति ३—शील तथा बारह व्रतों का पालन ४—विनयसम्पन्नता ५—त्याग (दान देना) ६—वैयावृत्य ७—साधुसमाधिकरण इत्यादि।

रेवती श्राविका के इस उपर्युक्त विवरण से यह बात भी स्पष्ट हो जाती है कि—(१) वह एक दृढ़ श्रमणोपासिका (१२ व्रत धारिणी श्राविका) थी। (२) निग्गंठ नायपुत्र (श्रमण भगवान महावीर) के लिये सिंह अनगार (निर्ग्रन्थ) को शुद्ध द्रव्य से तैयार किया गया औषध का दान देने के प्रभाव से तीर्थंकर नाम कर्म का उपार्जन किया। (३) मृत्यु उपरान्त देवलोक में गया। (४) श्राविका उन प्रमुख श्राविकाओं में से एक थी जो श्रमण भगवान महावीर की तीन लाख अठारह हजार उत्कृष्ट श्राविकाएं थीं। इस पर से तथा स्तम्भ नं० २ में हम श्रावक-श्राविकाओं के आचार का जो विवरण दे आये हैं उस पर से यह स्पष्ट जान सकते हैं कि ऐसे आचार वाली रेवती श्राविका मद्य मांस मदिरा इत्यादि सब प्रकार की अभक्ष्य वस्तुओं की स्वयं त्यागिनी थी क्योंकि उसे अर्हत्-वचन पर दृढ़ श्रद्धा थी और उसने बारह व्रतों को ग्रहण करते समय श्रावक के सातवें भोगोपभोग परिमाण व्रत में इन अभक्ष्य वस्तुओं का त्याग कर दिया था। वह यह भी जानती थी कि न तो जैन प्रवचन में श्रावक श्राविका को मांसाहार करने की आज्ञा है न ही तीर्थंकर स्वयं मांसाहार ग्रहण करते हैं तथा निर्ग्रन्थ श्रमणों को भी मांसाहार लेने एवं करने की मनाही है। कहने का आशय यह है कि सात कुव्यसनों की त्यागिनी तथा बारह व्रत धारिणी होने के नाते मांस खरीद कर अथवा उसे घर में ला सकती थी न पका सकती थी और न ही स्वयं खा सकती थी। न ही निर्ग्रन्थ मुनि तथा तीर्थंकर के लिये मांसाहार दे सकती थी वह यह भी भली भांति जानती

था कि अर्हत प्रवचन म मांसाहार को श्रमण भगवान महावीर ने नरक का कारण बतलाया है। मांस खाने वाले खाने वाले तथा बनाने वाले सब को घातक (कसाई) की कोटि म गिना है। तथा यह भी बात निःसन्देह है कि जो रोग निगंठ नायपुत्त (श्रमण भगवान महावीर) को इस समय था, जिस रोग के शमन के लिये यह औषध दान दी गयी थी उस रोग म मांसाहार अत्यन्त हानिकारक है।[१] ऐसे विचारों से सम्पन्न तथा श्राविका के श्रेष्ठ चारित्र (व्रतों) से अलंकृत रेवती श्राविका मांसाहार बनाए यह स्वयं खाय अथवा परिवार को बना कर खिलाये, तीर्थंकर के लिये दे और मुनि को दान मे दे यह कदापि सम्भव नहीं हो सकता। तथा मांसाहार के दान से तीर्थंकर नामकर्म का उपार्जन कर एवं मृत्यु उपरान्त देवगति प्राप्त करे य सब बातें जैन सिद्धान्त के तो विरुद्ध हैं ही। साथ ही इस रोग के लिये भी सारा हानिकारक होने से इस औषध दान को मांसाहार के दान की कल्पना करना नितान्त अनुचित है।

श्रमण भगवान महावीर जसे महान संयमी और महान तपस्वी, जिन्होंने तप और संयम की साधक अवस्था म घोरातिघोर उपसर्गों तथा परीषहों को वीतराग भाव से सहन किया नवकोटिक अहिंसा को अपनी आत्मा म एकाकार करके विश्व के सामने एक महान् आदर्श उपस्थित किया ऐसे करुणासागर महान् अहिंसक निगंठ नायपुत्त (भगवान वर्धमान महावीर) न तो मांसाहार स्वीकार कर सकते थे और न ही सिंह अनगार को लाने के लिये आज्ञा दे सकते थे।

१—इस बात का स्पष्टीकरण आगे करेंगे।

(७)

मांसाहारी प्रदेशों में रहने वाले जैनधर्मावलम्बियों का जीवनसंस्कार तथा उनके प्रभाव वाले प्रदेशों में अन्य धर्मावलम्बियों पर उनका प्रभाव

१—भगवान महावीर की अपूर्व अहिंसा का ही यह प्रभाव है कि मूलवाद में अथवा वर्तमान बंगाल में मांसाहारी प्रदेशों में भी निवास करने वाले जैनधर्मावलम्बी आज भी कट्टर निरामिषाहारी हैं।

२—जो जातियाँ हजारों-सैकड़ों वर्ष पहले जैन धर्म को मानती थीं और बाद में निर्ग्रन्थ श्रमणों के विहार उन प्रदेशों में न होने से सैकड़ों वर्षों से जैन धर्म को भूल कर अन्य सम्प्रदायों में मिल चुकी हैं परन्तु उनके वंशजों को अपने पूर्वजों के जैन होने का ज्ञान है वे सराकादि जातियाँ बंगाल बिहार उड़ीसा आज के मांसाहारी प्रदेशों में रहते हुए भी कट्टर निरामिषाहारी हैं। ये रात्रिभोजन के भी त्यागी हैं मद्य मांस मत्स्य आदि सात कुव्यसनों के भी त्यागी हैं भगवान पार्श्वनाथ को अपना कुलदेवता मान कर उनकी पूजा उपासना भी करती हैं मार्गानुसारी के गुणों के पालन में भी तत्पर रहती हैं इसलिए इन्हें आज भी इस बात का गर्व है कि वे आज तक किसी भी फौजदारी अपराध में दंडित नहीं हुई।

३—तथा जहाँ जहाँ पर जैन धर्मावलम्बियों का आज भी प्रभाव है वहाँ रहने वाले वैष्णव शैव आदि जातियाँ ऐसी हैं जो जैन धर्मानुयायी न होते हुए भी कट्टर निरामिषाहारी हैं।

४—आज से हजारों सैकड़ों वर्ष पहले कई मांसाहारी जातियों को

श्रीमाल पोरवाल आदि वर्गों की स्थापना की जो तब से लेकर आज तक कट्टर निरामिषाहारी हैं।

५—मारवाड़ मेवाड़ गुजरात आदि प्रदेशों में जहां पर अनेक गीतार्थ निग्रंथों ने जगह जगह पर अनेक शताब्दियों तक प्रचार किया उनके उपदेशों के प्रभाव से इन सब प्रदेशों की अधिकतर जनता निरामिषाहारी है।

इस से निष्पक्ष को स्वीकार करना पड़ता है कि श्रमण भगवान् महावीर स्वामी (निग्गंठ नायपुत्त) की अहिंसा में यदि मत्स्य मांस आदि अभक्ष्य पदार्थों के भक्षण करने की आज्ञा होती तो जनधर्मावलम्बी तथा उनके प्रभाव वाले क्षेत्र में भी आज मत्स्य मांस आदि अभक्ष्य पदार्थ भक्षण करने की शिथिलता आये बिना कदापि न रहती।

बात उन्हें मालूम न होने से जैनों पर ऐसा आक्षेप न किया हो!

परन्तु प्रथम तो यह बात ही असंभव है कि जैनों के मध्य किसी भी अन्य धर्मावलम्बी ने न देखा हो। बौद्ध पिटकों तथा अन्य सम्प्रदायों के धर्मग्रंथों में स्पष्ट पता चलता है कि अनेक निर्ग्रंथ श्रमणों ने जैनधर्म का त्याग कर अन्य सम्प्रदायों का अङ्गीकार किया। ऐसी अवस्था में ऐसे लोगों ने जैन धर्म छोड़ने से पहले जैन शास्त्रों का पठन पाठन श्रवण आदि अवश्य किया ही होगा और निर्ग्रंथचर्या का पालन भी किया ही होगा। अतः वे लोग जैन आचार विचारों से पूर्णरूपेण परिचित थे। जैनधर्म का त्याग करने के बाद जैनधर्म के प्रति उनका अनादर होना भी निश्चित है। ऐसी अवस्था में यदि जैन तीर्थंकर निर्ग्रंथ-श्रमण एवं श्रमणोपासकों के मांस मत्स्यादिभक्षण करने का वर्णन जैनागमों में होता अथवा वे ऐसा अभक्ष्य भक्षण करते होते तो इसके लिए अन्य धर्मों को स्वीकार करने वाले जैनधर्म के विरोध में अवश्य मांसाहार का आक्षेप करते।

दूसरी बात यह है कि इन तथ्यवादियों की यह बात मान भी ली जाय कि जैनेतर विद्वानों के हाथ में जैन शास्त्र न आने से वे जैन शास्त्रों से पूर्णरूपेण अनभिज्ञ रहे इसलिए वे लोग जैनधर्मियों के मांसाहार करने की आलोचना न कर पाये। इस बात के उत्तर में हमें इतना ही कहना है कि यह बात तो निःसंदेह ही है कि जैनधर्मावलम्बियों के आचरण से तो सब लोग भलीभांति परिचित थे। यदि जैनधर्मावलम्बियों में किसी भी समय किसी भी रूप में मांस मत्स्याहार का प्रचलन होता तो वे जैनों पर इसका अवश्य आक्षेप करते।

४—इसी प्रकार प्राचीन अथवा नवीन जो भी जैनधर्म में अन्य धर्म-सम्प्रदाय हैं उन सब ने जैन धर्म की कई बातों की आलोचना की होगी आक्षेप भी किये होंगे किन्तु किसी भी धर्म सम्प्रदाय के विद्वानों ने जैनों पर मांसाहार का आक्षेप कभी नहीं किया।

५—यदि भगवान महावीर अथवा उनके निर्ग्रंथ श्रमण युक्त चतुर्विध

सब मांसाहारी होते (चाहे वह फिर अपवाद रूप से अथवा उत्सर्ग रूप से हो) तो यह बात निश्चित है कि अन्य धार्मिक जनों पर मांसाहार का आरोप किए बिना कदापि न रहते। वे अवश्य ही इनकी अवहेलना करते। क्या कि हम देखते हैं कि एक पंथ वाला अपने पंथ के प्रचार के लिए दूसरे पंथ के अनुयायियों की बात पर उसे बहुत बढ़ा चढ़ा कर अथवा झूठ और निर्मूल बात को भी उस की विरोध स्वरूप कह डाला करते हैं। विशेष रूप से निन्दा के लिए कोई कसर बाकी उठा नहीं रखता। जिस से उस पंथ के प्रति घृणा पैदा करके जनता का अपनी ओर आकृष्ट किया जा सके। ऐसा खण्डन मण्डन प्रायः प्रत्येक पंथ के दूसरे शास्त्रों में पाया जाता है। तथा अनेक बार ऐसा भी देखा जाता है कि आचार सम्बन्धी भी आलोचना करके उस पंथ के विरोध में प्रचार किया जाता है।

ऐसा होते हुए भी तत्कालीन किसी भी धर्म-सम्प्रदाय वालों ने जैनों पर मांसाहार का आरोप नहीं लगाया। इस से यह स्पष्ट है कि जैनों में मांसाहार का पूर्ण रूप से सर्वथा निषेध माना जा रहा है। तथा वे इस पवित्र आचार में सब लोग पूरी तरह से परिचित थे। ऐसी अवस्था में उस समय यदि कोई मांसाहारी पुरुष या श्रमणोपासक कामार्थी जैसा व्यक्ति ऐसा आचरण करने का दुस्साहस करता भी तो जनता में उसकी प्रतिष्ठा जमने का बजाय उस मिथ्या प्रचार का समर्थन करने के प्रति अश्रद्धा हो जाना स्वाभाविक था। इस से यही फलित होता है कि जैन तीर्थंकर, निर्ग्रन्थ श्रमणादि चतुर्विध जैनसंघ कदापि मांसाहार नहीं करते थे।

तथागत गौतम बुद्ध की निग्रन्थ अवस्था की तपश्चर्या में मांसाहार को ग्रहण न करने का वर्णन ।

हम इस निबन्ध के प्रथम खण्ड के नवमे स्तम्भ में लिख आये हैं कि गौतम बुद्ध ने कुछ काल तक निग्रंथ अवस्था में रह कर निग्रंथ परम्परा मान्य तपश्चर्या को किया था। उसमें बुद्ध ने स्वयं कहा है कि मैं–१—मत्स्य मांस-सुरा आदि वस्तुएं नहीं लेता था। २—बैठे हुए स्थान पर दिये हुए अन्न को और ३—अपने लिये तय्यार किये हुए अन्न को ग्रहण नहीं करता था, इत्यादि। (मज्झिम निकाय महासीहनाद सुत्त)

इससे यह फलित होता है कि १—यदि बुद्ध के समय निग्रंथ परम्परा में मांसाहार का प्रचार होता तो गौतम बुद्ध निग्रंथचर्या का पालन करते समय के वर्णन में कदापि यह न कहते कि 'मैं मत्स्य-मांस-सुरा आदि का सेवन नहीं करता था'। २—क्योंकि बुद्धत्व प्राप्त करने के बाद तो बुद्ध तथा उनके भिक्षु मांसाहार करते थे तब जैन आदि अन्य पंथ वाले जो इन अभक्ष्य पदार्थों का सेवन नहीं करते थे वे बौद्धों पर इस शिथिलता के लिए आक्षेप भी किया करते थे। यदि निग्रंथ परम्परा में मांसाहार का प्रचार होता तो गौतम बुद्ध अपने बचाव के लिये जैनों को उत्तर में यह अवश्य कहते पाये जाते कि तुम भी तो मांसाहार करते हो? किन्तु ऐसा आक्षेप बौद्ध ग्रंथों में कहीं भी उपलब्ध नहीं होता। ३—यदि निग्रंथ परम्परा में मांसाहार का सर्वथा निषेध न होता तो सम्भवतः गौतम बुद्ध निग्रंथ धर्म को त्याग करने की आवश्यकता प्रतीत न करते। उन्होंने निग्रंथचर्या की इस कठोरता के पालन करने में अपने आप को असमर्थ पाया इसलिये उन्हें इस मार्ग को छोड़ बिना अन्य कोई उपाय

नहीं था वे निर्ग्रन्थों से अलग हो कर ही मत्स्य-मांस जैसी अभक्ष्य वस्तुओं का भक्षण कर सकते थे।

इस से यह स्पष्ट है कि निर्ग्रन्थचर्या में मांसाहार की किंचिन्मात्र भी गुंजाइश नहीं है।

बौद्ध कापालिक वेदधर्मानुयायी तथा अन्य अनेक सम्प्रदाय उस समय मांस मत्स्यादि भक्षण करने वाले थे ऐसी अवस्था में यदि कोई ऐसा तर्क करता हो कि जब अन्य धर्मावलम्बी मांस मत्स्यादि का आहार करते थे तो जैन इस से कैसे बच सकते थे? यह दलील भी इन की युक्तिसंगत नहीं है क्योंकि उस समय अनेक अन्यमतावलम्बी तपस्वी भी जैनों के समान ही मांसाहार नहीं करते थे और इस का पूर्ण रूप से निषेध करते थे ऐसा हम बौद्धग्रंथ सुत्तनिपात के चौदहवें आमगंध सुत्त में एक तपस्वी का काश्यप बुद्ध के साथ हुए संवाद से जान सकते हैं। वैसे ही जैन भी इन अभक्ष्य-भक्षणों से सदा अलिप्त रहे हैं। तथा मांस-मत्स्य भक्षण के सर्वव्यापी प्रचार के इस युग में ऐसे गंदे वातावरण में भी जैन समाज इस से सर्वथा बची हुई है यह हमारे सामने प्रत्यक्ष प्रमाण है।

श्रमण भगवान् महावीर का रोग तथा उसके लिये उपयुक्त औषध।

निग्गंठ नायपुत्त (श्रमण भगवान महावीर) को चार प्रकार के रोग थे—(१) रक्त पित्त (२) पित्त ज्वर, (३) दाह तथा (४) रक्तातिसार रोग थे। और ये रोग उन को छद्मस्थ अवस्था में हुए थे। जो कि उन के विरोधी गोशालक के द्वारा छोड़ी हुई तेजोलेश्या के स्पर्श से हो गया था। तेजोलेश्या में इतनी प्रबल दाहक शक्ति होती है कि उसके स्पर्श में आ जाता है वह भस्म हो जाता है। इसी लिये भगवान महावीर को इसके स्पर्श मात्र के प्रभाव से हो ऐसा भयंकर रोग हो गया था। इस रोग के उपचार के लिये कौन सी औषध उपयुक्त हो सकती है इस का निर्णय करने से पहले हम पाठकों की जानकारी के लिये इस रोग के कारण लक्षण तथा वृद्धि के कारण बतला देना चाहते हैं ताकि हम जान सकें कि निदान में चिकित्सा शास्त्र की दृष्टि से प्राण्यंग मांस भक्षण करना लाभकारी हो सकता है अथवा वनस्पति से तैयार की हुई औषध ?

१—रक्त पित्त रोग का लक्षण भेद तथा कारण—

रक्तपित्तं त्रिधा प्रोक्तमूर्ध्वगं कफसंगतम्।
अधोगं मारुताज्जातं तद्द्वयं द्विमार्गगम् ॥ १९ ॥

(सारंगधर संहिता प्र० ख० अ० ७)

अर्थात्—रक्तपित्त तीन प्रकार का होता है-(१) ऊर्ध्वगामी (२) अधोगामी (३) उभयगामी (ऊपर व नीचे दोनों मार्गों से रक्त जाय)

ऊर्ध्वगामी—जिस रोग में मुख, नाक आदि ऊर्ध्व मार्ग से रक्त गिरता है, वह कफ के सम्बन्ध से होता है।

अधोमार्गगामी—जिस रोग में गुदा, लिंग आदि अधोमार्ग से रक्त गिरता है वह रोग वात के सम्बन्ध से होता है।

ऊपर और नीचे दोनों मार्गों से रक्त गिरने वाला रक्तपित्त द्विमार्गगामी कहलाता है और यह वात और कफ इन दोनों कारणों से होता है।

इस प्रकार यह रोग तीन प्रकार का होता है।

रोग होने के कारण—

अधिक व अधिक गरम से धूप में बहुत घूमने से अति परिश्रम करने से मैथुन आदि अनेक कारणों से रुधिर के बिगड़ जाने से रुधिर ऊपर के अथवा नीचे के मार्ग से अथवा दोनों मार्गों से बाहर निकलता है उसे रक्तपित्त रोग कहते हैं।

इस रोग में अपथ्य—गर्म पदार्थ खार पदार्थ तथा ... पदार्थ इत्यादि। (आयभिषक)

२—पित्त ज्वर के लक्षण—सारे शरीर में दाह ज्वर का वेग तीव्र तथा मुख और नींद में बड़बड़ाना अतिसार इत्यादि।

(आयभिषक पृ० ५११)

३—दाह रोग के लक्षण—शरीर में जलन तथा प्यास होना इत्यादि। यह रोग अग्नि द्वारा जलने अथवा मद्यपान से मूर्छा के बाद में गिरने से गरम पदार्थों के सेवन से अथवा पित्त के प्रकोप के कारण से अन्तर्दाह (शरीर के अन्दर का दाह) तथा बहिर्दाह (बाहर शरीर जलता है) अथवा दोनों दाह उत्पन्न होते हैं। इस के भेद ये हैं—(१) रक्तपित्त दाह (२) रक्त दाह (३) पित्त दाह (४) तृष्णा दाह (५) रक्तपूर्णोदर दाह (६) धातु दाह (७) मद्यपान दाह।

इस रोग में अपथ्य—गरम चरपरा खार तथा मिर्च वाले पदार्थ खाना गरमी देना गरम पदार्थ खाना इत्यादि। (आयभिषक पृ० ५१०)।

४—रक्तातिसार—खून के साथ दस्त आना इसे मरोड़ भी कहते हैं।

अपथ्य—मद्य मूंग ... स्निग्ध भोजन तथा भारी पदार्थ इत्यादि। (आयभिषक पृ० ४०१·२)

यहाँ पर हमने भगवान महावीर के रोग उसके होने के कारण, लक्षण तथा असाध्य आदि का विस्तृत स्वरूप वर्णन कर दिया है, जिस का संक्षेप इस प्रकार है ।

गोशालक के तेजोलेश्या छोड़ने पर उस के तीव्र ताप के कारण भगवान् को अधोगामी रक्त पित्त तथा रक्तातिसार हो जाने के कारण खून की टट्टियाँ लग गयी थी। पित्तज्वर तथा दाहरोग भी थे जिनके कारण तीव्र ज्वर तथा शरीर में बहुत अधिक जलन भी थी। ये रोग गरम स्निग्ध भारी पदार्थ तथा खट्टे खारे कडवे पदार्थों के सेवन से बढ़ते हैं।

हम यहा पर इस बात का विचार करेंगे कि इस रोग मे मांसाहार लाभकारी है अथवा घातक ?

मांस में गुण और दोष--

'स्निग्ध उष्ण गुरु रक्त पित्तजनक वातहर च।
सर्वमांस वातध्वमिवृष्य।।"

अर्थात्--मांस स्निग्ध गरम भारी रक्त पित्त को पैदा करने वाला तथा वात को दूर करने वाला है। सब प्रकार के मांस वातहर तथा भारी है।

यदि भगवान् महावीर के रोग का विचार करें तो यह बात निर्विवाद सिद्ध हो जाती है कि मुर्गे का मांस इस रोग का निवारण नहीं कर सकता क्योंकि मांस इस रोग को उत्पन्न तथा वृद्धि करने वाला है यह आयुर्वेद शास्त्र का स्पष्ट मत है।

अतः इस से यही फलित होता है कि भगवान महावीर पर मांसाहार का दोष लगाना नितान्त अनुचित है।

इस लिये रेवती श्राविका द्वारा इस औषध दान में जो द्रव्य दिया गया था वह कुक्कुट मांस (मुर्गे का मांस) कदापि नहीं था किन्तु कोई वनस्पति विशेष थी। यह औषध कौनसी थी इस का निर्णय हम आगे करेंगे।

विवादास्पद प्रकरण वाले पाठ में आने वाले शब्दों के वास्तविक अर्थ

(१) मांस शब्द की उत्पत्ति का इतिहास

प्रारम्भ में मांस शब्द किसी भी पदार्थ के गर्भ अर्थात् भीतरी सार भाग के अर्थ में प्रयुक्त होता था। धीरे धीरे यह शब्द मनुष्यादि प्राणधारियों के तृतीय धातु के अर्थ में तथा वनस्पति जनित फल मेवा आदि के अर्थ में प्रयुक्त होने लगा।

वैदिक धर्म के सर्वाधिक प्राचीन ग्रंथ ऋग्वेद में पशुयज्ञों का तथा ब्राह्मणों के मांस खाने का वर्णन नहीं है। वैदिक निघण्टु में मांस शब्द अथवा मांस का कोई अन्य नाम नहीं मिलता। परन्तु उस समय मांस था तो अवश्य। प्राचीन वेद तथा प्राचीन वैदिक कोश में इसका उल्लेख न होने का कारण यही है कि तत्कालीन ऋषि लोग प्राणी के अंग रूप मांस को किसी कार्य में इस्तेमाल नहीं करते थे। इस लिये उनकी बनाई हुई वैदिक ऋचाओं में मांस शब्द नहीं आता था और न ही उसे वैदिक निघण्टु में लिखने की आवश्यकता थी।

बाद में ऋग्वेद में कुछ सूक्त प्रक्षिप्त हुए उन सूक्तों में मांस और क्रविष् ये दो शब्द पाये जाने लगे। अथर्ववेदसंहिता में मांस शब्द के उपरान्त पिशित और क्रविष् शब्द मिलते हैं। यद्यपि वेद में आम शब्द कच्चे मांस को कहते हैं। परन्तु आचार्य यास्क के मत में वेद काल में आम शब्द सामान्य मांस में प्रयुक्त होता होगा। जैन और बौद्ध सम्प्रदायों के प्राचीन सूत्रों में आने वाले आमगन्ध शब्दों के 'आम' इस शब्द का मांस के अर्थ में ही प्रयोग किया गया है। इस से प्रतीत होता है कि आज से ढाई हजार

वप और इस से पहिले मांस पिशित आम और क्रविय ये चार शब्द मांस के अर्थ में प्रयुक्त होते थे।

(२) मांस के नामों में वृद्धि

ईसा पूर्व छठी शताब्दी तक मांस के चार नाम ही प्रचलित थे। इन में से आम और क्रविय वैदिक नाम होने के कारण लोकव्यवहार में से लुप्त हो गये, परन्तु मांस के कुछ नये नाम भी प्रचलित हो गये जिनका क्रमिक इतिहास इस प्रकार है। अमरकोश' जो कि विद्यमान सब शब्द कोशों से प्राचीन है—पांचवीं शताब्दी की कृति है—उसमें मांस के छः नाम मिलते हैं। इसके छः तथा सात सौ वर्ष बाद अथवा ग्यारहवीं बारहवीं शताब्दी में होने वाले वैजयन्ती तथा अभिधानचिन्तामणि कोशों में क्रमशः बारह तथा तेरह नाम संग्रहीत हैं—

'मांसपललं जांगले । रक्ततेजः तेजोभवेऽभ्यकाव्यप तरसामिष ॥ ६२२ । मेदस्कृत पिशित कीलं पललम ॥

(अभिधानचिन्तामणि)

उक्त मांसादि नामों के अर्थों का विचार करने से स्पष्ट होता है कि मांस जिसका अर्थ प्राणि अंग होता है यह मनुष्य के खाने का पदार्थ नहीं था।

प्रत्येक नाम सदा के लिये एक ही अर्थ में प्रयुक्त नहीं होता। कई ऐसे नाम हैं जो प्रारम्भ में एकार्थक होते हुए भी हजारों वर्षों के बाद अनेकार्थक बन चुके हैं जैसे—अश्व मधु हरि आदि नाम। कई अनेकार्थक नाम हजारों वर्षों के बाद एकार्थक बन जाते हैं जैसे मृग फल मांस आदि शब्दों के अर्थ गर्हित हो जाने के कारण उन अर्थों का त्याग हो जाता है। कोशकार अपने समय में जो शब्द जिस अर्थ का वाचक होता है वे उसी अर्थ का प्रतिपादन करते हैं। लुप्तार्थों तथा भविष्यत् अर्थों की कल्पना में वे कभी नहीं पड़ते। ज्यों ज्यों जिस पदार्थ के नाम बढ़ते जाते हैं त्यों त्यों आगे के कोशकार अपने कोश में संग्रह करते जाते हैं।

(२) वनस्पतियों में मांस आदि

जिस प्रकार मनुष्यादि प्राणधारियों के शरीर में (१) रस (२) रुधिर, (३) मांस (४) मेद (५) अस्थि (६) मज्जा और (७) वीर्य—ये सात धातु हैं उसी प्रकार अति प्राचीन काल से वनस्पतियों में भी रसादि सात धातु माने जाते थे।

१—मनुष्यादि प्राणधारियों का ऊपरी आवरण चर्म अथवा त्वचा कहलाता है, उसी प्रकार वनस्पतियों के शरीर का आवरण भी चर्म अथवा त्वक् कहलाता है।[1]

२—मनुष्यादि प्राणधारियों के आहार से तैयार हुआ सार रस कहलाता है वैसे ही वनस्पतियों में रस तथा जल भाग रस कहलाता है।[2]

३—प्राणधारियों के शरीर में निकलने वाला तत्त्व रुधिर कहलाता है वैसे ही वनस्पतियों में काटने पर बहने वाला स्राव उनका रुधिर कहलाता है।[3]

४—प्राणधारियों के रुधिर से बनने वाला ठोस पदार्थ मांस कहलाता है वैसे ही वनस्पतियों में भीतर वाला सार भाग (गूदा) मांस कहलाता है।[4]

१—शाखापलाश खदिर बिल्व स्वयम् विकङ्कत न्यग्रोध पनसाऽऽम्र शिरीषोदुम्बराणां सर्वयाज्ञिकवृक्षाणां धर्मकषायकल्केनाभिषिञ्चति ४४ / (बौधायन गृह्यसूत्र पृ० २५५)

अर्थात् इसी प्रकार खदिर बिल्व अश्वत्थ विकङ्कत न्यग्रोध पनस आम्र शिरीष उदुम्बर इन वृक्षों तथा अन्य सब याज्ञिक वृक्षों के चर्म (छिलके) के चूर्ण में मिले जल से स्नान कराने में (विष्णुमूर्ति का) अभिषेक करें।

२—तस्मात्तदा तृण्णात्प्रैति रसो वृक्षादिवाहतात् (बृहदारण्यकोपनि०)

अर्थात्—जिस प्रकार वृक्ष पर प्रहार करने से रस निकलता है वैसे ही पुरुष पुरुष के प्रहार से रस निकलता है।

३—त्वच एवास्य रुधिरं प्रस्यन्दि त्वच उत्पटः (बृहदारण्यकोपनि०)

अर्थात्—इसका रुधिर स्राव है जो त्वचा (छिलके) के भीतर से झरता है।

४—मज्जा स्नायुसमं मांसिकल्पम् (चरक संहिता)

५–प्राणधारियों के मांस से मेद (मेदो किलाट) धातु बनता है वैसे वृक्षों के अंग प्रत्यंगों से मेदस सदृश सार निकलता है उसे वनस्पतियों का मेदो धातु कहते हैं।[५]

६–प्राणधारियों के शरीर में रहने वाले कठोर भाग को अस्थि कहते हैं वैसे वनस्पतियों के शरीर में रहने वाले (गुठली बीजों) को अस्थि कहते हैं।[६]

७–प्राणधारियों की अस्थियों में होने वाले स्निग्ध पदार्थ को मज्जा धातु कहते हैं वैसे फलों की गुठलियों तथा बीजों में से निकलने वाले स्निग्ध पदार्थ को वनस्पतियों की मज्जा कहते हैं।[७]

८–प्राणधारियों के अंतिम धातु को रेतस अथवा वीर्य आदि नाम प्राप्त हैं वैसे वनस्पतियों में भी अमुक अमुक प्रकार की शक्तियाँ रहती हैं। उनका शीतवीर्य उष्णवीर्य आदि नामों से वर्णन है।[८]

९–प्राणधारियों के शरीर पर के रोम रोंगटे और सिर पर के रोम-बाल कहलाते हैं वैसे ही वनस्पतियों के शरीर पर भी रोम तथा बाल

अर्थ–खजूर का मांस (गूदा) और नारियल का मांस (गिरी)।

५–मांसान्यस्य शकराणि कीनाटं स्नाव तत् स्थिरम् (बृहदार०)

अर्थ–भीतर के सार भाग के टुकड़े इसका मांस और स्निग्ध जमा हुआ स्राव इसका किनाट (मेदोधातु) है।

६–अस्थिबीजानां शकृदालेपः शाखिनां गर्तदाहो गोऽस्थि-शकृद्भिः काले दौहृदं च। (कौटिल्य अर्थशास्त्र पृ० ११८)

अर्थ–अस्थि (गुठली) और बीज वाले वृक्षों के बीजों को गोबर का लेप करके बोना चाहिए।

७-८–वातादमज्जा मधुरा, वृष्या तिक्ताऽनिलापहा।
स्निग्धोष्णा कफकृन्नेष्टा रक्तपित्तविकारिणाम्॥१२५॥

(भावप्रकाश नि०)

अर्थ–बादाम की मज्जा (गिरी) मीठी पुष्टि कारक वायु को नाश करने वाला, रक्तपित्त के रोगियों को हानिकारक स्निग्ध, उष्णवीर्य,

माने जाते हैं।[९]

१०—जैसे प्राणधर शिरा में आन होता है वैसे फलों में भी आतें मानी गयी हैं। जिनके द्वारा फल में रहे हुए बीज के शिराओं गूदे मेदस् का रस पहुंचता है उन रेशों को वैद्य लोग आत कहते हैं।[१०]

सुश्रुत संहिता में इससे भी स्पष्ट उल्लेख मिलता है जो नीचे दिया जाता है।

चूतफले परिपक्वे केशर मांसा ऽस्थि मज्जान पृथक्-पृथक् दृश्यते कालप्रकर्षात। तान्येव तरुणे नोपलभ्यन्ते, सूक्ष्मत्वात्। तेषां सूक्ष्माणां केशरादीनां काल प्रव्यक्ततां करोति।

(सुश्रुत संहिता शा० अ० ३ श्लो० ३२)

अर्थ—पके आम के फलों में केशर मांस अस्थि मज्जा प्रत्यक्ष

(गरम) और कफ करने वाली होती है।

९—स वा एष पशुरेवालभ्यते यत् पुरोडाशस्तस्य किंशारूणि तानि रोमाणि ये तुषाः सा त्वग् ये फलीकरणास्तदसृक् यत् पिष्ठं किक्नसास्, यत् सारं तन्मांसं यत्किञ्चित् कसारं तदस्थि, सर्वेषां वा एष पशूनां मेधेन यजते तस्मादाहुः पुरोडाशसत्रं लोक्यमिति (द्वितीय पञ्चिका अ० पृ०११५)

अर्थ—यह पशु का ही आलम्भन किया जाता है जो पुरोडाश तैयार करते हैं (उस में) यव व्रीहि पर जो किंशारू (नूर) होते हैं वे इन के रोम हैं इन पर जो तुष है वह इनका चर्म है जो फलीकरण है वह इनका रुधिर है जो पृष्ठ है वह इसकी राख है इसका जो कुछ सार भाग है वह मांस है इनका जो कसार (ऊपर का कठोर भाग) है वह अस्थि है जो इस पुरोडाश से यज्ञ करता है वह सब पशुओं से यज्ञ करता है। इस वास्ते पुरोडाश को लाभकारी सत्र कहते हैं।

१०—समुत्सृज्य ततो बीजान्, अन्त्राणि तु समुत्सृजेत्।
तानि प्रक्षाल्य प्रक्षाल्य तोयेन प्रवण्यां निक्षिपेत् पुनः॥

(पाकदर्पण पृ० २५)

अर्थ—उसमें से बीज तथा आतें निकाल दें, फिर उसे पानी से धो कर पानी में प्रवणी में रख।

रूप से दिखलाई देते हैं। परन्तु कच्चे आम में ये अंग सूक्ष्म अवस्था में होने के कारण अलग अलग दिखलाई नहीं देते। उन सूक्ष्म केसर आदि को समय पक्व रूप देता है।

४—मांसादि शब्दों के अंग्रेजी कोशकारों द्वारा अर्थ

मांस (संस्कृत)=1—Flesh स्नायु का समूह।

2—The flesh of fish मछली का मांस।

3—The fleshy part of a fruit फल का गूदा गिरी अथवा नरम भाग।

(आप्टेकृत संस्कृत-अंग्रेजी डिक्शनरी पृ० ७१३)

Flesh अर्थात्—मांस इस शब्द का अर्थ निम्न है—

1—The muscular part of animal
प्राणी का स्नायु।

2—Soft pulpy substance of fruit
फल का नरम भाग गूदा।

3—That part of root fruit etc which is fit to be eaten
कन्द फल आदि में जो भाग खाया जा सके वह भाग।

Stone—पत्थर इस शब्द का अर्थ निम्न है—

1—Stone of a mango
आम की गुठली

2—Stone in bladder
पथरी।

(English Dictionary by J Ogilvie)

५—वर्तमान में माने जाने वाले प्राणीवाचक शब्दों तथा मांस मत्स्यादि शब्दों के अनेक अर्थ

पलल'—आजकल यह शब्द मांस का नाम माना जाता है परन्तु

आमिष पले ॥ १३३० ॥ सुन्दराकारफलाबी सम्भोगेलेम सम्बयो ।(अनेकार्थ)

अथ—आमिष—मास, सुन्दराकार रूप आदि सम्भोग लाभ और रिश्वत है।

पल शब्द का अर्थ आजकल एक तरह का तोल तथा विचार और मास अर्थ मे प्रसिद्ध है। परन्तु पहले इसके निम्न अर्थ समझे जाते थे—

'पल पलालो धान्यत्वक तुषा ब्रस बडगरा ॥ ११८२ ॥ *(अभिधानचिन्तामणि)*

अर्थात्—पल पलाल धान्य का छिल्का तुष और बडगर ये भूँ के नाम है।

अज नाम से आज बकरा और विष्णु का अर्थ समझा जाता है किन्तु इसके अर्थ एसा मालिक धातु पुराना धान जो उगन की शक्ति नष्ट कर चुके हो, होते हैं। (शालिग्राम औषध शब्द सागर)।

ये सब उपर्युक्त उद्धरण इस बात का आशय यह है कि मास मज्जा अस्थि आदि शब्द जिस प्रकार प्राणियों के अंगों के लिये आते हैं उसी प्रकार वनस्पति के अंगों के लिये भी आते हैं। तथा जिन शब्दों का अर्थ हम प्राणी समझते हैं उन शब्दों का प्रयोग वनस्पति और पदार्थों आदि खाद्य पदार्थों के लिये भी होता है। ऐसी परिस्थिति में लिखे गये शास्त्रों के विवरणों के अर्थनिर्णय में विद्वानों द्वारा गलती होना असभव नहीं है। यही कारण है कि वेद जैनागमों तथा बौद्धपिटको में आने वाले तत्कालीन खाद्यपदार्थों के अर्थ में आने वाले शब्दों के प्रसगों तथा परिस्थितियों का विचार किए बिना अर्थ का अनर्थ करके आज कल के कतिपय विद्वानों ने अनेक प्रकार की विकृतियां फैला दी हैं।

अब हम इस विषय को लम्बा न करके यहां पर कुछ ऐसे शब्दों की सूचि देते हैं जिन के अर्थ वनस्पति और प्राणी दोनों होते हैं।

६—शब्द जो प्राणधारी और वनस्पति दोनों के वाचक हैं—

नाम	प्राणी-अर्थ	वनस्पति अर्थ
रावण	लंका का राजा	[illegible]
लक्ष्मण	राम का भाई	[illegible]
राम	दशरथ का बेटा	[illegible]
सुरप्रिया	स्त्री देवांगना	[illegible]
ब्रह्मा	चार मुख वाला ब्रह्मा	[illegible]
विभीषण	रावण का भाई	[illegible]
विष्णु	विष्णु अवतार	[illegible]
लक्ष्मी	विष्णुपत्नी	[illegible]
शिव	शंकर	[illegible]
पार्वती	भवानी गिरिजा	[illegible]
कृष्ण	देवकीनन्दन	[illegible]
कपि	बन्दर	[illegible]
आम	माम	[illegible]
नाग	[illegible]	[illegible]
वत्स	बच्चा	[illegible]
करभ	हाथी का बच्चा	[illegible]
गोकर्ण	गाय का कान	[illegible]
गोजिह्वा	गाय की जीभ	[illegible]
गोशीर्ष	गाय का सिर	[illegible]
काक काकजंघा	कौआ कौए की [illegible]	[illegible]
तुरग	घोड़ा	[illegible]
पेशी	मांसपिंड	[illegible]
महामुनि	[illegible]	[illegible]
मार्जार	बिल्ली	[illegible]
		[illegible]
		[illegible]
		इत्यादि

राजपुत्र	राजकुमार	बल्मीगोरा
वराह	सूअर	नागरमोथा
श्वदंष्ट्रा	कुत्ते की दाढ़	गोखरू
विप्र	ब्राह्मण	पीपल का वृक्ष
जटायु	पक्षी विशेष	गुग्गुल
भारी मकटी,	बन्दरी	कौंच के बीज
वानरबीज कपि	बन्दर	कौंच के बीज
मांसफल	मांस	बैंगन
कोकिला कोकिलाक्ष	कायर कोयल की आंख	तालमखाना
हस्तिकर्ण	हाथी का कान	लाल एरंड की जड़
त्वक	चमड़ी	छिलका
अस्थि	हड्डी	बीज गठली
भुजंग	सांप	नागकेसर
तरुणी	जवान स्त्री	गुलाब

७—वर्तमान काल में कुछ प्रचलित शब्द

शब्द	प्राणी वाचक	वनस्पतिवाचक
कुक्कुटी कुक्कुट	मुर्गी मुर्गा (पंजाब गुजरात)	भुट्ट (उत्तरप्रदेश)
भाजी	मांस (मुल्तान सिंध देश)	रांधा हुआ शाक
गलगल	गट्टहार पक्षी	बाजारा फल विशेष
तरकारी	मांस (उत्तर पंजाब)	साग सब्जी (राजस्थान)
चील	चील पक्षी (उत्तरप्रदेश)	चील शाक की भाजी
गालहारी	गिलहरी (उत्तरप्रदेश)	शाक

रज्जालु	स्त्री	छुई-मुई पौधा
पोग्ग	विभाग अग (मालवा)	हरा चना (गुजरात)
फूल	विभग अग	आम्र फल
छाल्ली	बकरी	भूट्ट (पजाब)

उपयुक्त विवरण से यह बात स्पष्ट हो जाती है कि अनेक शब्द ऐसे हैं जिनका प्रयोग आज कल की चालू भाषा में भी प्राणियों तथा वनस्पतियों दोनों में होता है एव प्राणियों के अगो तथा वनस्पतियों के अंगो के लिए भी ऐसा ही है। तथा यह भी स्पष्ट है कि एक शब्द का अर्थ —देश काल और भाषा आदि की अपेक्षा से भी भिन्न भिन्न हो जाता है। इस लिए सुज्ञ पुरुष वही है जो प्रसग परिस्थिति देश काल भाषा एव व्यक्ति के चरित्र आदि को समझ कर उसके अनुकूल अर्थ को स्वीकार करे।

८—श्रमण भगवान महावीर और भक्ष्याभक्ष्य विचार

भगवतीसूत्र शतक १८ उद्दे्शा १० में श्रमण भगवान [illegible] तथा सोमिल नामक ब्राह्मण का एक प्रसग आता है। उस में कथन है कि एकदा भगवान वाणिज्य ग्राम में पधारे। वहाँ सोमिल नामक ब्राह्मण रहता था। वह धनाढ्य अपरिभूत सामर्थ्यवान तथा ऋग्वेद आदि समस्त ब्राह्मण शास्त्रों का पारगत विद्वान था। वह पाँचसो शिष्यों तथा बहुत बड़े कुटुम्ब का अधिपति था। एक दिन वह श्रम महावीर के पास समवसरण में आया और उसने अनेक कूट प्रश्न पूछे। उन में कुछ प्रश्न भक्ष्याभक्ष्य सम्बन्धी भी पूछे गए उसका विवरण इस प्रकार है —

[प्रश्न] [1]सरिसवा ते भते ! किं भक्खेया, अभक्खेया ? [उत्तर] सोमिला! सरिसवा [मे] भक्खेया वि अभक्खेया वि। [प्र०] से केणट्ठेण भते ! एव वुच्चइ–'सरिसवा भक्खेया वि अभक्खेया वि ? [उत्तर] से नूण ते सोमिला! बम्भण्णएसु नएसु दुविहा सरिसवा पन्नत्ता

१ सरिसव द्विअर्थ प्राकृत शब्द है। इसका एक अर्थ सरसव (सरसों) होता है और दूसरा अर्थ समानवयस्क मित्र होना है।

त जहा मित्त सरिसवा य धन्नसरिसवा य । तत्थ णं जे ते मित्तसरिसवा ते तिविहा पन्नत्ता, तं जहा सहजायया, सहवड्ढियया, सहपंसुकीलियया, ते णं समणाणं निग्गंथाणं अभक्खेया। तत्थ णं जे ते धन्नसरिसवा ते दुविहा पन्नत्ता, तं जहा-सत्थपरिणया य असत्थपरिणया य तत्थ णं जे ते असत्थ परिणया ते णं समणाणं निग्गंथाणं अभक्खेया। तत्थ णं जे ते सत्थपरिणया ते दुविहा पन्नत्ता, तं जहा-एसणिज्जा य अणेसणिज्जा य। तत्थ णं जे ते अणेसणिज्जा ते समणाणं निग्गंथाणं अभक्खेया। तत्थ णं जे ते एसणिज्जा ते दुविहा पन्नत्ता तं जहा-जाइया य अजाइया य। तत्थ णं जे ते अजाइया ते णं समणाणं निग्गंथाणं अभक्खेया। तत्थ णं जे ते जाइया ते दुविहा पन्नत्ता, तं जहा-लद्धा य अलद्धा य। तत्थ णं जे ते अलद्धा ते णं समणाणं निग्गंथाणं अभक्खेया। तत्थ णं जे ते लद्धा ते णं समणाणं निग्गंथाणं भक्खेया से तेणट्ठेणं सोमिला! एवं वुच्चइ-जाव अभक्खेया वि'

अर्थात —(प्रश्न) हे भगवन! सरिसव को आप भक्ष्य मानते हैं अथवा अभक्ष्य? (उत्तर) हे सोमिल! सरिसव मुझे भक्ष्य भी है अभक्ष्य भी है। (प्रश्न) हे भगवन! इसका क्या कारण है? (उत्तर) हे सोमिल! तुम्हारे ब्राह्मण ग्रन्थों में दो प्रकार का सरिसव कहा है (१) मित्र सरिसव समानवयस्क (२) और धान्य सरिसव। इस में जो मित्र सरिसव है वह तीन प्रकार का है (१) साथ जन्मा हुआ (२) साथ में पला हुआ और (३) साथ में खेला हुआ। ये तीनों प्रकार के सरिसवा (समानवयस्क) मित्र श्रमण निर्ग्रथों को अभक्ष्य हैं। जो धान्य सरिसव है वह दो प्रकार का है शस्त्रपरिणत और अशस्त्रपरिणत इस में जो अशस्त्रपरिणत-अग्नि आदि शस्त्र से निर्जीव नहीं हुआ—वह श्रमण निर्ग्रंथों को अभक्ष्य है। और जो शस्त्रपरिणत (अग्नि आदि से निर्जीव हुआ) है वह दो प्रकार का है (१) एषणीय इच्छा करने योग्य निर्दोष (२) अनेषणीय न इच्छा करने योग्य-सदोष। इस में जो अनेषणीय है वह श्रमण निर्ग्रथों को अभक्ष्य है। जो एषणीय सरसों है

वह दो प्रकार का है (१) शस्त्र परिणत—अचित्त हुए (२) अशस्त्र परिणत—सचित्त रहे हुए। इन में जो अशस्त्र परिणत हैं वे श्रमण निर्ग्रन्थों को अभक्ष्य हैं। जो शस्त्र परिणत हैं वे भी दो प्रकार के हैं (१) प्राप्त हुए और (२) न प्राप्त हुए। इन में जो न मिले वह श्रमण निर्ग्रन्थों का अभक्ष्य है। जो सरसों श्रमण निर्ग्रन्थों को मिले हुए हों वह भक्ष्य है। हे सोमिल! इसलिए मैं कहता हूँ कि सरिसव भक्ष्य भी है अभक्ष्य भी है।

(प्र०) मासा ते भंते! किं भक्खेया अभक्खेया? (उ० सोमिला! मासा भक्खेया वि अभक्खेया वि (प्र०) से केणट्ठेणं जाव अभक्खेया वि? (उ०) से नूणं ते सोमिला! बंभण्णएसु नएसु दुविहा मासा पन्नत्ता, तं जहा दव्वमासा य कालमासा य। तत्थ णं जे ते कालमासा ते णं सावणादीया आसाढ पज्जवसाणा दुवालस पन्नत्ता तं जहा सावणे भद्दवए आसोए कत्तिए मग्गसिरे पोसे माहे फग्गुणे चित्ते वइसाहे जेट्ठामूले आसाढे ते णं समणाणं निग्गंथाणं अभक्खेया। तत्थ णं जे ते दव्वमासा ते दुविहा पन्नत्ता तं जहा—अत्थमासा य धन्नमासा य। तत्थ णं जे ते अत्थमासा ते दुविहा पन्नत्ता तं जहा—सुवन्नमासा य रुप्पमासा य ते णं समणाणं निग्गंथाणं अभक्खेया। तत्थ णं जे ते धन्नमासा ते दुविहा पन्नत्ता तं जहा सत्थपरिणया असत्थपरिणया य एवं जहा धन्नसरिसवा जाव से तेणट्ठेणं जाव अभक्खेया वि।

अर्थात्—(प्र०) हे भगवन्! मास भक्ष्य है कि अभक्ष्य? (उ०) हे सोमिल! मास भक्ष्य भी है अभक्ष्य भी है। (प्र०) हे भगवन्! आप किस कारण से ऐसा कहते हैं कि मास भक्ष्य भी है, अभक्ष्य भी है? (उ०) हे सोमिल! ब्राह्मण नयों में मास दो प्रकार का कहा है वह इस प्रकार—द्रव्य मास और काल मास। इन में जो काल मास है वह श्रावण से लेकर आषाढ़ तक बारह महीने हैं। वे इस प्रकार—श्रावण भाद्रपद आसोज कार्तिक मार्गशीर्ष पौष माघ फाल्गुन चैत्र वैशाख जेठ और आषाढ़ ये श्रमण निर्ग्रन्थों को अभक्ष्य हैं। इन में जो द्रव्य मास है—वह भी दो प्रकार का है सो इस प्रकार—अर्थ मास और

धान्य मास। उस में जो अर्थ मास है वह भी दो प्रकार—"स्वर्णमास और रौप्यमास। यानी चान्दी का मासा सोने का मासा (एक प्रकार के तोलने के बाँट)। ये भी श्रमण निग्रंथों को अभक्ष्य हैं। जो धान्य माष (उड़द) हैं वे भी दो प्रकार के हैं—शस्त्रपरिणत (अग्नि आदि से अचित्त हुए) और अशस्त्रपरिणत (अग्नि आदि से अचित्त नहीं हुए—सजीव)। इत्यादि जैसे धान्य सरसों के लिए कहा वैसा धान्य माष (उड़द) के लिए भी समझ लेना। यावत—वह इस हेतु से अभक्ष्य भी है।

यानी—अग्नि आदि से अचित्त उड़द भी दो प्रकार का है—एषणीय और अनेषणीय (साधु के निमित्त अग्नि से न रांधा हुआ निर्दोष और साधु के निमित्त से रांधा हुआ सदोष)। इस में जो अनेषणीय है वह श्रमण निग्रंथों को अभक्ष्य है। एषणीय उड़द भी दो प्रकार के हैं याचित (मांगे हुए) अयाचित (न मांगे हुए)। इन में जो अयाचित रांधे हुए उड़द हैं वे श्रमण निग्रंथों को अभक्ष्य हैं। और जो याचित रांधे हुए उड़द हैं वे भी दो प्रकार के हैं—मिले हुए (प्राप्त) न मिले हुए (अप्राप्त)। इन में जो नहीं मिले ऐसे रांधे हुए उड़द श्रमण निग्रंथों को अभक्ष्य हैं। और जो रांधे हुए मांगने पर प्राप्त हो गये हैं ऐसे निर्दोष उड़द श्रमण निग्रंथों को भक्ष्य (खाने योग्य) हैं। हे सोमिल! इस कारण से मास भक्ष्य भी है अभक्ष्य भी है।

(प्र०) कुलत्था ते भंते! किं भक्खेया अभक्खेया? (उ०) सोमिला! कुलत्था भक्खेया वि अभक्खेया वि। (प्र०) से केणट्ठेणं जाव अभक्खेया वि? (उ०) से नूणं सोमिला! ते बंभन्नएसु नएसु दुविहा कुलत्था पन्नत्ता तं जहा—इत्थि कुलत्था य धन्नकुलत्था य। तत्थ णं जे से इत्थिकुलत्था ते तिविहा पन्नत्ता तं जहा—कुलकन्नया इ वा कुलवहुया इ वा कुलमाउया इ वा, ते णं समणाणं निग्गंथाणं अभक्खेया। तत्थ णं जे से धन्नकुलत्था एवं जहा धन्नसरिसवा से तेणट्ठेणं जाव अभक्खेया वि। (भगवती शतक १८ उद्देशा १०

अर्थात्—(प्र०) हे भगवन ! आप कुल्त्था भक्ष्य मानते हैं अथवा अभक्ष्य ? (उ०) हे सोमिल ! कुलत्था भक्ष्य भी है अभक्ष्य भी है। (प्र०) हे भगवन् ! किस हेतु से भक्ष्य है ? किस हेतु से अभक्ष्य है ? (उ०) सोमिल ! तुम्हारे ब्राह्मण शास्त्रों में कुलत्था दो प्रकार का कहा है—स्त्रीकुलत्था (स्त्री) और धान्यकुलत्था (कुल्थी)। इसमें जो स्त्री कुलत्था है वह तीन प्रकार की है वह इस प्रकार—कुलकन्या कुलवधू और कुलमाता। ये सब श्रमण निग्रंथों के लिये अभक्ष्य हैं। इस में जो कुल्थी अनाज है इत्यादि वक्तव्यता सरसों धान्य के समान जानना। इसलिए यह भक्ष्य भी है अभक्ष्य भी है।

याना—अग्नि आदि से अचित्त एषणीय याचित प्राप्त निर्जीव कुल्थी अनाज ही श्रमण निग्रंथों का भक्ष्य है। बाकी अन्य सब कुलत्था अभक्ष्य हैं।

सारांश यह है कि—भगवतीसूत्र में निगंठ नायपुत्त (श्रमण भगवान् महावीर) ने—सरिसव मास तथा कुलत्थ इन तीनों शब्दों के अर्थ प्राणिपरक द्रव्यपरक तथा वनस्पतिपरक भी बतलाये हैं। उनमें से इन्होंने स्पष्ट कहा है कि प्राणिपरक तथा द्रव्यपरक आदि पदार्थ तीर्थंकरों तथा निग्रंथ श्रमणों एवं श्रमणीयों के लिये सर्वथा अभक्ष्य हैं। वनस्पतिपरक पदार्थों में से भी जो वनस्पतियाँ अग्नि आदि के प्रयोग से निर्जीव हैं और यदि वे निग्रंथ श्रमण के लिए तैयार न की गयी हों तो उसमें से आवश्यकता पड़ने पर निग्रंथ श्रमण को मांगने पर प्राप्त हो गया हो ऐसा निर्जीव आहार निग्रंथ श्रमण के लिए भक्ष्य है। अन्य सब प्रकार का आहार इनके लिए अभक्ष्य है।

इससे स्पष्ट है कि श्रमण भगवान महावीर तथा उनके निग्रंथ श्रमण सामिषाहार कदापि ग्रहण नहीं कर सकते। तथा यह भी स्पष्ट है कि एक एक शब्द के अनेक अर्थ होते हैं उन अर्थों में से जिस प्रसंग पर जो अर्थ उपयुक्त है वहां वह अर्थ करना समझदार व्यक्ति का कर्तव्य है और ऐसा करने में ही उसकी विद्वता की सच्ची प्रमाणता है। अनुचित अर्थ करना

विद्वत्ता के लिए शोभाप्रद रहा है किन्तु विद्वत्ता को दूषित करने वाला है।

अब हम यहाँ पर विवादास्पद सूत्रपाठ के वास्तविक अर्थ के लिये विचार करें।

१—भगवतीसूत्र का (विचारणीय) मूल पाठ इस प्रकार है —

"तत्थ णं रेवतीए गाहावइणीए मम अट्ठाए दुवे कवोय-सरीरा उवक्खडिया तेहिं नो अट्ठो। अत्थि से अन्ने पारियासिए मज्जारकडए कुक्कुडमंसए तमाहराहि। एएणं अट्ठो।

(भगवतीसूत्र, शतक १५)

समर्थ शास्त्रज्ञ नवांगीटीकाकार आचार्य अभयदेवसूरि द्वारा की गयी इस सूत्रपाठ की टीका तथा इस का अर्थ इसी स्तम्भ ११ के विभाग क ख अंगों में विस्तृत लिख आये हैं तथा इस अर्थ की पुष्टि में अंग ग घ ङ में उनके समकालीन तथा निकट भविष्य में हो गये तीन आचार्यों के उद्धरण भी दे आये हैं। अब यहां पर इस पाठ के विवादास्पद शब्दों के वास्तविक अर्थ सप्रमाण लिखेंगे।

इन शब्दों के इस स्थान पर संस्कृत अथवा अर्धमागधी शब्दकोश के प्रचलित अर्थ लेना उचित नहीं क्योंकि यहां तो ये औषध के रूप में इस्तेमाल (उपयोग) किये गये हैं। अतः इनके अर्थ वैद्यकीय शब्दकोशों से लेने उचित हैं। यदि इन शब्दों के अर्थ वनस्पतिपरक मिल जावें और वे वनस्पतियाँ इस रोग के निदान के अनुकूल हों तो अवश्य स्वीकार कर लेने चाहिये। सुज्ञ विज्ञों के लिये यही शोभाप्रद है।

हम यह स्पष्ट कर आये हैं कि प्राणिअंग मांस इस रोग का निदान कदापि नहीं हो सकता। वैद्यक शब्दकोश संस्कृत भाषा में उपलब्ध होने से नीचे लिखे विचारणीय शब्दों के संस्कृत पर्यायवाची शब्दों का जान लेना भी परमावश्यक है —

इस सूत्रपाठ में निम्नलिखित शब्द विचारणीय हैं —

अर्धमागधी शब्द	संस्कृत पर्याय
दुवे कवोयसरीरा	द्वे कपोत शरीरे
उवक्खडिया	उपस्कृत
नो अट्ठो	नवार्थोऽस्ति
अन्न	अन्यत्
पारियासिए	पर्युषित
मज्जारकडए	मार्जार कृत
कुक्कुड	कुक्कुट
मंसए	मांसक

१०—कवोय-कपोत क्या था ?

कवोय शब्द का अर्थ आज कल कबूतर पक्षी समझा जाता है परन्तु कपोत एक प्रकार का खाद्य वनस्पति है। यह पूरा का पूरा उपस्कृत हो सकती है और बहुत समय तक टिक सकती है। इसके सेवन से उष्णता पित्तज्वर रक्तविकार रक्त पित्त और अतिसार रोग शान्त होते हैं। कपोत और कपोत से बने हुए शब्दों के अर्थों में भिन्नता होती है। उनका ब्योरा इस प्रकार है —

१—कपोत—पारापत एक प्रकार की वनस्पति (सुश्रुत संहिता फलवर्ग)

२—कपोत—पारीस पीपर (वैद्यक शब्दसिन्धु)

३—कपोत—कपोतिका—सफेद कोला पेठा कूष्माण्ड (निघण्टु-रत्नाकर)

४—कपोत—कबूतर पक्षी

५—कपोतक—सज्जी खार

६—कपोताञ्जन—हरा सुरमा (निघण्टुरत्नाकर)

७—पारापतपदी—मालकांगनी (भावप्रकाश)

८—कपोतवर्णा—इलायची

९—कापोती—कृष्ण कापोती श्वेत कापोती वनस्पतियां (सुश्रुत स०)

कृष्ण कापोती तथा श्वेत कापोती शब्दों से पाठक काला या श्वेत कबूतर ही समझेंगे। परन्तु वास्तव में ये शब्द किस अर्थ के बोधक हैं इसका खुलासा नीचे दिया जाता है —

"श्वेतकापोती समूलपत्रा भक्षयितव्या (सुश्रुत संहिता)।
सक्षीरां रोमशां मृद्वीं रसेनक्षुरसोपमाम।
एवंरूपरसां चापि कृष्णां कापोतीमादिशेत ॥
कौशिकीं सरितं तीर्त्वा सञ्जयास्तु पूर्वतः।
क्षितिप्रदेशो वाल्मिकराचितो योजनत्रयम ॥
विज्ञेया तत्र कापोती श्वेता वाल्मिकमूर्धसु ॥

(कपोती प्राप्तिस्थान-सुश्रुत स०)

उपर्युक्त शब्दों से स्पष्ट है कि कपोत तथा कपोत से बने हुए शब्द अनेक प्रकार की वनस्पतियों तथा अन्य पदार्थों के वाचक हैं। कपोत के रंग जैसा हरा सुरमा होने से इसका नाम कपोताञ्जन कहलाता है। छोटी इलायची का रंग कपोत के सदृश होने से कपोतवर्णा कहलाती है। इसी प्रकार पेठे का रंग भी कबूतर के समान ऊपर से हरा होने से कपोत कहलाता है। अनेक कपोत शब्द के अर्थ लिख चुके हैं —

(१) कपोत = पारापत (एक प्रकार की वनस्पति) (२) पारीस पीपर (३) पेठा (कूष्माण्ड) (४) कबूतर पक्षी।

इनके गुण-दोषों का वर्णन वैद्यक ग्रन्थों में इस प्रकार है —

१—पारापत —

पारापत सुमधुर रुच्यमत्यग्निवातनुत (सुश्रुत संहिता)

२—पारीस पीपर —

"पारिशो दुर्जरः स्निग्धः कृमिशुक्रकफप्रदः ॥५॥
फलेऽम्लो मधुरो मूलं कषायः स्वादु मज्जकः ॥६॥

(भावप्रकाश वटादिवर्ग)

३—कूष्माण्ड फल भारी मकर कुम्हेड़ा पेठा —

(क) स्निग्ध लघु कुष्माण्ड बाल मध्य कफापहम्।
मूत्रल स्वादुवत क्षार दीपन बस्तिशोधनम् ॥२१३॥
सर्वदोषहर हृद्य पथ्य चेतो विकारिणाम् ॥२१४॥
(सुश्रुतसंहिता ५६ अध्याय)

अर्थ—पक्व कद्दू उष्ण क्षीरलरसा बस्तिशोधक सर्व दोषहर है।

(ख) "लघु कुष्माण्डक रूक्ष मधुर ग्राहि शीतलम्।
दोषघ्न रक्तपित्तघ्न मलस्तम्भकर परम् ॥ ॥"

अर्थ—छोटा पेठा ग्राही शीतल रक्त-पित्तनाशक तथा मलरोधक है।

(ग) 'कूष्माण्ड शीतल वृष्यं स्वादु पाकरस गुरु।
हृद्य रूक्ष रसस्यन्दि श्लेष्मल वातपित्तजित् ॥
कूष्माण्डशाक गुरु सन्निपातज्वरामशोषानि दाहहारि ॥"
(कैयदेव निघण्टु)

अर्थ—पेठा शीतल पित्त नाशक ज्वर, आम दाह आदि को शान्त करने वाला है।

(घ) कूष्माण्ड स्यात् पुष्पफल पीत पुष्प बृहत्फलम् ॥५३॥
कूष्माण्डं बृंहण वृष्यं गुरु पित्तास्रवातनुत्।
बाल पित्तापह शीत मध्यम कफकारकम् ॥५४॥
वृद्ध नातिहिम स्वादु सक्षारं दीपनं लघु।
बस्तिशुद्धिकर चेतोरोगहृत्सर्वदोषजित् ॥५५॥
कूष्माण्डी तु भृशं लघ्वी कर्कारुरपि कीर्तिता।
कर्कारु ग्राहिणी शीता रक्तपित्तहरी गुरु ॥५६॥
पक्वा तिक्ताऽग्निजननी सक्षारा कफवातनुत् ॥५७॥
(भावप्रकाश निघण्टु शाकवर्ग)

अर्थ—पेठा रक्त पित्त और वात दोषनाशक है। छोटा पेठा पित्त नाशक शीतल और कफजनक है। बड़ा कोलाउष्ण मीठा दीपक [illegible] हृदयरोग नाशक तथा सर्वदोषहारी है।

ग्राही शीतल, रक्त पित्तदोषनाशक। यदि पका हो तो अग्निवर्धक है।

(४) कबूतर पक्षी का मांस —

"स्निग्ध उष्ण गरु रक्तपित्तानक वातहर च।

सवमांस वातविध्वंसि वृष्य॥

अर्थ— मांस स्निग्ध गरम भारी तथा रक्तपित्त के विकारों को पैदा करने वाला है वात को हरने वाला है। सब मांस वातहर और वृष्य है।

यहाँ पर 'कवोय' शब्द है चार अर्थों में से तीन अर्थ वनस्पतिपरक हैं तथा एक अर्थ मांसपरक है।

भगवान महावीर स्वामी को रोग थे —

(१) रक्तपित्त, (२) पित्तज्वर (३) दाह (४) अतिसार।

इन रोगों को शान्त करने के लिए इन चारों पदार्थों में से छोटा कुष्माण्ड (पेठा) फल ही औषधरूप लिया जा सकता था क्योंकि इन में से यही औषध इन रोगों को शान्त करने में समर्थ थी। पारापत तथा पारीस पीपर ये दो वनस्पतिपरक औषधियां इस रोग को शांत नहीं कर सकती थीं। मांस तो इस रोग को पैदा करने वाला, बढ़ाने वाला है। अतः सेठ की भार्या रेवती श्राविका ने भगवान् महावीर स्वामी के रोग के शमनार्थ दो छोटे पेठे के फल ही समर्पित किये थे इस में सन्देह का अवकाश नहीं।

प्राचीन चूर्णि तथा टीकाकारों ने भी दुवे कवोयसरीरा[1] का अर्थ दो छोटे पेठे फल ही किया है यह हम पहले लिख आये हैं।

---

१ दुवे कवोयसरीरा —ये तीन शब्द हैं। सरीरा शब्द कवोय' से निष्पन्न पुल्लिंग वाले द्रव्य का वाचक है। यदि यह सरीराणि (नपुंसक लिङ्ग) शब्द का प्रयोग होता तो इसका अर्थ पक्षीशरीर पर लागू हो सकता था। क्योंकि नपुंसक शरीर शब्द ही प्राणी शरीर या मुर्दे के अर्थ में आता है किन्तु शास्त्रकार को यह भी अभीष्ट नहीं था। अतः उन्होंने यहां सरीराणि का प्रयोग न करके पुल्लिंग में सरीरा शब्द

यद्यपि अन्न तीर्थंकर तथा निग्रंथ श्रमण को उनके अन्न निमित्त तैयार किए गए आहार आदि लेने की मनाही है। इस बात को भगवान महावीर ने स्वयं सोमिल ब्राह्मण के प्रश्न करने पर स्पष्ट कहा है कि निग्रंथ श्रमण के निमित्त तैयार किया गया आहार अनग्रणीय है इस लिये अभक्ष्य है, इसका आहार साधु न ले। अतः यह सदोष आहार होने के कारण भगवान महावीर ने सिंह मुनि को लाने के लिए मना कर दिया। यह औषधि रेवती श्राविका ने भगवान महावीर के लिये बनायी थी भगवान ने अपने केवलज्ञान द्वारा इस बात को जाना और कहा कि 'अस्थि से अन्ने पारियासिए मज्जार-कडए कुक्कुड-मसए तमाहराहि। एएण अट्ठो। अर्थात दूसरा जो रेवती ने अपने लिए मज्जार-कडए कुक्कुड मसए' तैयार करके औषध रख छोड़ी है वह लाओ।

११—"मज्जार कडए कुक्कुड मसए" क्या था ?

(क) मज्जार-मार्जार

'मज्जार' शब्द का संस्कृत पर्याय मार्जार है। इसका अर्थ आजकल बिल्ली समझा जाता है।

का प्रयोग किया है और उसका अर्थ फल के साथ ही सम्बन्धित होना चाहिए है। आगे आने वाला अन्न शब्द भी पुल्लिङ्ग होने से इसी मत की पुष्टि करता है।

दूसरी बात यह है कि मांस के साथ शरीर शब्द का प्रयोग नहीं होता। विपाक सूत्र में मांस का वर्णन है मगर किसी जानवर का के साथ शरीर शब्द का प्रयोग नहीं हुआ है। किन्तु वनस्पति शब्द इस प्रकार वनस्पति शरीर' का प्रयोग सर्वत्र जनागमों में पाया जाता है।

इससे भी यह स्पष्ट है कि यहां पर शरीरा का सम्बन्ध वनस्पति के साथ ही है। इससे भी कबूतर के मांस का अर्थ सिद्ध नहीं होता। अतः स्पष्ट है कि यहां पर दो साबुन छोटे पेठा फलों का गूदा का अर्थ ही ठीक है। क्योंकि मुरब्बा साबुत फलों का अथवा उनके अन्दर के गूदे का डाला जाता है जैसे साबुत आंवलों का मुरब्बा डाला जाता है।

परन्तु यहाँ पर मार्जार शब्द भी वनस्पति विशेष का नाम है जिस वनस्पति का औषधि में शीतलता, वायुशमन आदि गुण लाने के लिये भावना या पुट दी जाती है, जिसका प्रभाव गर्मी (उष्णता-दाह) इत्यादि रोगों को शांत करने में उपयोगी है। वैद्यक निघण्टुओं तथा जैनागमों में भी इसका ऐसा वनस्पति अर्थ किया गया है। प्रज्ञापनासूत्र के प्रथम पद में वृक्षों के अधिकार में मज्जार शब्द की व्याख्या इस प्रकार है —

१—"वत्थुल-पोरग मज्जार पोइवल्लिय पालक्का"।

(जैनागम पन्नवणा सुत्तपद १ हरित विभाग)

जैनागम भगवतीसूत्र २१ वें शतक में भी 'मज्जार' शब्द वनस्पति के अर्थ में आया है —

२— 'अब्भसह-वोयाण हरितग-तदुलेज्जण-तण वत्थुल पोरग मज्जार पाइ विल्लिया।" (भगवतीसूत्र)

३— 'मार्जार —विरालिकाभिधानो वनस्पतिविशेष।"

(भगवतीसूत्र शतक १५ टीका)

४—कुशरे भीरु मार्जार किंशुका इगुदी न यण।

अगस्त्ये मुनि मार्जारायगस्तिवगसेनका" ॥१५६॥

(वैजयन्ती भूमिकांड वनाध्याय)

अर्थ—कुशर (हिंगोटी) के भीरु मार्जार किंशुक इगुदी ये नाम हैं। इगुदी शब्द पुल्लिंग और स्त्रीलिंग में है। अगस्त्य के मुनि मार्जार अगस्ति वगसेन ये नाम हैं।

५— अगस्ति की शिम्बा सारक बुद्धिप्रद भोजन की रुचि उत्पन्न करनेवाली त्रिदोष नाशक इत्यादि अनेक गुणों वाली है। (शालिग्राम)

६—मार्जार—रक्तचित्रक नामक पौधा (राजनिघण्टु)।

७—मार्जार—विडाली भूमि कुष्माण्ड (वैद्यक शब्दसिंधु पृ० ८८९)।

८—मार्जार—त्रिल्ली (वनस्पति विशेष) विडालिका वृक्षपर्णी।

९—मार्जार—खट्टाश (अ०स० श्री हेमचन्द्राचार्य)

१०—मार्जार—एक प्रकार की वायु (भगवती टीका)

११—मार्जार[1]—बराली बिरालिका बराल बराल, लवङ्ग (वैद्यक शब्दसिन्धु, [illegible] (वनौषधि निघण्टु २ भाग) ।

१२—बराल बरालक (हिन्दी वि [illegible])

मार्जार—अर्थात् बिरालिका (लवंग) के क्या अद्भुत गुण हैं वे नीचे के श्लोक में दिये जाते हैं —

लवंग कटुक तिक्त लघु नेत्रहित हिम ।
दीपन पाचन रुच्य कफपित्तास्रनाशकृत ॥
तृष्णा छर्दिस्तथाऽऽध्मान शूलमाशु विनाशयेत ।
कासश्वासश्च हिक्काश्च क्षय क्षपयति ध्रुवम ॥१॥

(वैद्यक शब्दसिन्धु पृ० [illegible])

अनेकार्थतिलक सग्रहकृत —

१ मार्जार शब्द के और भी अनेक अर्थ (पर्यायवाची शब्द) [illegible] कोषों और निघण्टुओं में उपलब्ध हैं उनमें से यहाँ कुछ [illegible] पाठकों की जानकारी में वृद्धि होगी—

२ मार्जार=नश्रम न त्रिशङ्कुस्तु मार्जारे शलभ नरे ।
तूलिका [illegible] तूलपशाङ्कादौ । [illegible]
मार्जारो मन्मथे चूते मुकुन्द पारद [illegible]
विघो [illegible] मनादौ मार्जारमपरेऽ[illegible]
नक्रगाऽपि मार्जारे विराप [illegible]
नुकास द्वयचे नीच विबुध पण्डि [illegible]

वृष्णसार स्नुहीवृक्ष [illegible]
कुष्माण्डकस्तु मार्जारे कुष्माण्ड[illegible]
महात्या नवे मास मघवा [illegible]
मार्जारी यस्तु मार्जारे [illegible]

मार्जार—बिडाल बिल्ली (हिन्दी [illegible]

अर्थात्—लवंग मृदु, तीक्ष्ण, लघु, चक्षुष्य, ठण्डा, दीपन, पाचक रुचिकर। कफ पित्त मल नाश करने वाला। तृष्णा (प्यास), वमन, आध्मानवायु शूल के दर्द को शीघ्र नाश करने वाला। खांसी, श्वास, क्षय आदि रोगों को शीघ्र दूर करने वाला है।

वद्यक ग्रंथ आर्यभिषक (शंकर दाजी पदे कृत) पृ० ३५९ मे लिखा है कि —

लवंग लघु कड़वा शीतल रुचिकर तीक्ष्ण, पाककाले मधुर, उष्ण, पाचक अग्निदीपक स्निग्ध हृद्य वृष्य तथा विशद है, तथा वायु पित्त, कफ आम क्षय, खांसी शूल आनाहवायु श्वास उचकी, शांति विष, क्षतक्षय क्षय तृष्णा पीनस रक्तदोष आध्मान वायु को नाश करता है।

आर्यभिषक फुट नोट पृ० ३५९-मे लिखा है —

लवंग पेट की पीड़ा का नाशक प्यास बन्द करने वाला उल्टी तथा वायु आदि को दूर करने के लिये औषध रूप मे दी जाती है।

इन सब उद्धरणों से तथा टिप्पणी मे दिये गये उद्धरणों से स्पष्ट है कि 'मार्जार' शब्द के वनस्पतिपरक अनेक अर्थ होते हैं। वायु तथा

मार्जार—रक्तचित्रक वृक्ष लालचीता पेड़ खटास
(हिन्दी विश्वकोष)

बिडाल—हरिताल यष्टी गरिश सिधूत्थदार्वीताक्ष्य समाशका ॥
(वाचस्पति बृहत्संस्कृताभिधान)

मार्जार—ताम्र भूपाल मार्जार गरुभा स्युस्विनखुक ॥१२०७॥
मार्जारोऽपि पिशाच स्यात् मारीचा याचवद्विज ॥१३३९॥
(नानार्थरत्नमालाया अमरकोष)

वरालक—Varalika—cloves carissa carissa carandos
aromatic Spice—लवंग सुगंधित मसाला।

(Sanskrit English Dictionary by Sir Monier Monier Williams)

गन्धन अर्थ भी होता है। इसके अतिरिक्त बिल्ली तथा अन्य अनेक निर्जीव पदार्थों के लिए भी मार्जार शब्द आता है।

(ख) मज्जारकडए' का क्या अर्थ है ?

मज्जारकडए–मार्जारकृत (संस्कृत)। (१) मार्जार नाम की वनस्पति से बनाया हुआ। (२) मार्जार से संस्कारित किया हुआ। (३) मार्जार की भावना दिया हुआ। (४) मार्जार नामक वायु को शमन करने के लिए बनाया हुआ। (५) मार्जार वनस्पति में पकाया गया अथवा बनाया गया होता है।

(ग) कुक्कुड-कुक्कुट

कुक्कुट भी एक प्रकार की वनस्पति है, जो कि बहुत दिनों तक टिक सकती है। इसके सेवन से गर्मी, रक्तपित्त, पित्तज्वर, अतिसार आदि रोग शान्त होते हैं। उदाहरणार्थ कुक्कुट शब्द के कुछ अर्थ नीचे दिए जाते हैं —

१—"सुनिषण्णं सूचिपत्रं स्वस्तिकं शिरिवारकः।
श्रीवारकः शितिवरो वितुन्नः कुक्कुटः शिखी॥ (निघण्टु)

अर्थ – (१) सुनिषण्ण (२) स्वस्तिक (३) शिरिवारक (४) श्रीवारक (५) शितिवर (६) वितुन्न (७) कुक्कुट, (८) शिखि ये सुनिषण्ण के नाम हैं।

१– औषधि विज्ञान में संस्कारित वस्तुओं के लिए 'दधिकृत', 'राजीकृत', 'मार्जारकृत' इत्यादि प्रयोग होता है। इसका अर्थ क्रमशः 'दही से संस्कारित', 'राई से संस्कारित', 'वराहिका (लवंग) औषधि से संस्कारित' होता है। आशय यह है कि यहाँ 'कडए' का अर्थ 'संस्कारित' और 'मज्जारकडए' का अर्थ मार्जार वनस्पति से संस्कार (भावना आदि) पाया ठीक बैठता है। 'कडए' शब्द मारने अथवा हनन करने के अर्थ में प्रयोग किया हो, ऐसा सिद्ध नहीं होता।

"सुनिषण्णं हिमो ग्राही मोह दोषत्रयापह ।
अविदाही लघु स्वादु कषायो रूक्षदीपन ॥
वृष्यो रुच्यो ज्वर श्वास-मोह कुष्ठ भ्रमप्रणुत ॥ (भावप्रकाश)

अर्थ—सुनिषण्णक ठण्डा, मल रोकने वाला, मो० तथा त्रिदोष का नाशक दाह को शांत करने वाला हल्का स्वादिष्ट कषायरसवाला, रूक्ष अग्नि को बढ़ाने वाला बलकारक रुचिकर और ज्वर श्वास कुष्ठ तथा भ्रम का नाशक है।

२—कौटिलीय अर्थशास्त्र में भी कुक्कुट शब्द का प्रयोग वनस्पति के अर्थ में हुआ है। देखिये—

"कुक्कुट—कोशातकी शतावरीमूलयुक्तमाहारयमाणो मासेन गौरो भवति।" (कौटिलीय अर्थशास्त्र पृ० ४१५)

अर्थ—कुक्कुट (विषण्णक—चौपतिया भाजी) कोशातकी (तुरई), शतावरी इन के मूलों के साथ महीना भर भोजन करने वाला मनुष्य गौर वर्ण हो जाता है।

३—कुक्कुट—शाल्मली वृक्ष (सेमल का वृक्ष) (वैद्यक शब्दसिंधु)।

४—कुक्कुट—बीजपूरक (बिजोरा) (भगवतीसूत्र टीका)।

५—कुक्कुट—(१) कोषण्ड (२) करड (३) शांमरी (निघण्टु रत्नाकर)।

६—कुक्कुट—घास का उल्का आग की चिंगारी शूद्र और निषाद की वर्णसंकर प्रजा (ज० सं० प्र० क० ४३)

७—कुक्कुटी-कुक्कुटी पूरणी रक्तकुसुमा धुणवल्लभी। पूरणी वनस्पति (हमा निघण्टुसंग्रह)

८—कुक्कुटी-मातुलुंगकुटी=(स्त्री) मातुलुंगवृक्ष जम्बीरभेदे अर्थात्-बीजोरे वर्ग में से जम्बार फल (वैद्यक शब्दसिंधु टीका) (राज वल्लभ)

(घ) मसए मासक (मास से बना हुआ)

हम पहले लिख चुके हैं कि 'मांस' शब्द के वनस्पति फलगर्भ या गूदा आदि अनेक अर्थ होते हैं। जैसे—

(१) मांस (नपुंसक लिंग) मांस गर्भ फलगर्भ गूदा फांक।

(२) मांसक (पुल्लिंग) पाक मुरब्बा फलगर्भ से तैयार किया हुआ।

(३) मांस—गरिष्ठ पक्वान्न अन्नखाद्यमयान्न)

उपर्युक्त विवरण से यह स्पष्ट है कि —

(१) जो गरिष्ठ पक्वान्न खाद्य पदार्थ होते हैं उनमें प्रथम नंबर का खाद्य मांस कहलाता था जो धान्य शक्कर पिष्ट (पीठी) आदि से बनाया जाता था। उस में कपूर तथा लाल चन्दन का रंग दिया जाता था।

(२) पके मीठे फलों को छीलकर उनके बीज या गुठलियां निकाल कर तैयार किया हुआ फलों या मेवों का गूदा भी मांस कहलाता था। मांस—फलगर्भ अर्थात् फल का गूदा (वैद्यक शब्दसिंधु)।

(३) प्राणीअंग के तृतीय धातु को भी मांस कहते थे।

(४) मांस शब्द (फलों मेवों फलियों के) गर्भ, गूदे के लिये प्रयुक्त होता है।

(ङ) मार्जार और कुक्कुट वनस्पतियां कैसा अद्भुत औषधीय गुण रखती हैं यह निम्नलिखित वर्णन से ज्ञात होगा —

(१) मार्जार अर्थात् अगस्त्य तथा अगस्ति का गिन्दा के कैसे उत्तम गुण होते हैं यह नीचे के श्लोक से विदित होगा —

"अगस्त्या वगसेनो, मधुनिग्धम् निद्रुम ।
अगस्त्य पित्तकफजिच्चातुर्थिकहरो हिम ।
तत्पम पीनसश्लेष्मपित्तनक्तान्ध्यनाशनम ॥"

(मदनपाल निघण्टु)

अर्थ —अगस्त्य वगसेन मधुनिग्धु मुनिद्रुम इन नामों से पहचाना जाता है। अगस्त्य पित्त और कफ का जीतने वाला है। चतुर्थिक ज्वर को दूर करता है और शीतवीर्य है। इस का स्वरस प्रतिश्याय श्लेष्म रात्र्यान्ध्य नाशक है।

"मुनिनिम्बो सरा ग्राहका, बुद्धिदा रुचिदा लघु ।
पाककाले तु मधुरा, तिक्ता चैव स्मृतिप्रदा ॥
त्रिदोषशूलकफहृत्, पाण्डुरोगविषापनुत् ।
श्लेष्म-गुल्महरा प्रोक्ता, सा पक्वा रूक्षपित्तला ॥"

(शालिग्राम निघण्टु)

अर्थ-अगस्ति की निम्बा सारक ग्राही है बुद्धि देने वाली, भोजन की रुचि उत्पन्न करने वाली हल्की पाक काल में मधुर, तीखी स्मरणशक्ति बढ़ाने वाली त्रिदोष का नाश करने वाली शूलरोग कफरोग को हटाने वाली विष को नष्ट करने वाली और श्लेष्म गुल्म को हटाने वाली होती है परन्तु पकी हुई निम्बा रूक्ष और पित्त करने वाली होती है।

(२) कुक्कुट अर्थात सुनिषण्णक (चौपतिया भाजी) मधकुक्कुटी अर्थात जम्बीर फल आदि है इनके गुणदोषों का विवरण इस प्रकार है —

(कुक्कुट) "सुनिषण्णो हिमो ग्राही मोहदोषत्रयापह् ।
अविदाही लघु स्वादु कषायो रूक्षदीपन ॥
वृष्यो रुच्यो ज्वर श्वास मेह कुष्ठ भ्रम प्रणुत् (भावप्रकाश)

अर्थ—सुनिषण्णक (चौपतिया भाजी) ठंडी, दस्त रोकने वाली, मोह तथा त्रिदोष को नाश करने वाली दाह को शांत करने वाली हल्की स्वादिष्ट कषाय रस वाली रूक्ष अग्नि को बढ़ाने वाली बल तथा रुचि कारक ज्वर श्वास प्रमेह कुष्ठ और भ्रम को नाश करने वाली है।

(४–समुद्रफेन) समुद्रफेन फेनश्च डिण्डिराऽब्धि कफस्तथा।
(शालिग्राम निघण्टु हरीतक्यादि वर्ग)

(५–मुलहठी) मधुयष्टिर्यष्टिमधुर्मधुयष्ट्याह्वा क्लीतका स्मृता।
मधुक यष्टिमधुक यष्टिका मधुयष्टिका॥

(६–नागनागिनी) कर्कट शृंगी न गी कुलिङ्गी वासनागिनी।
महाघोषा च चक्राङ्गी कर्कटी वामूढजा॥

(७–भाग) भङ्गाख्या तु विजया त्रैलोक्यविजया जया।
(शालिग्राम निघण्टु अष्टवर्ग)

(८–अरणी) अग्निमन्थो हविर्मन्थ कर्णिका गिरिकर्णिका।
जया जयन्ती नर्करी नादेयी वैजयन्तिका॥

(९–शतावरी) शतमूली महाशीता भीरुपत्री शतावरी।
महाशतावरी त्वन्या शतवीर्या महोदरी॥
(शालिग्राम निघण्टु गुडूच्यादि वर्ग)

(१०–द्राक्षा) द्राक्षा मधुरसा स्वाद्वी कृष्णा चारुफला रसा।
मृद्वीका गोस्तनी चैव यक्ष्मघ्ना तापमप्रिया॥

(११–पीलु) पीलु शीतसहा स्रंसा धाना गुडफलस्तथा।
विरेचनफल शाखी श्याम करभवल्लभ॥
अथान्यच्च महत्पील महापीलुर्महाफल।
राजपीलु मनोज्ञ मधुपीलु पडाह्वय॥

(१२–ताड) तालस्तु लेख्यपत्र स्यात् तृणराजा महोन्नत।
श्रीतालो मधतालश्च लक्ष्मीताला मदुच्छद॥
(शालिग्राम निघण्टु फलवर्ग)

उपयुक्त १२ उद्धरणों से स्पष्ट ज्ञात हो जाता है कि विशेषण रहित तथा विशेषण सहित नाम चिकित्साशास्त्र में पर्यायवाची होने से समानार्थक है। अतः मर्कटकुटा मर्कटकुटिका तथा कुकुटा भी पर्यायवाची शब्द होने से समानार्थक हैं इसमें सन्देह को किंचित् मात्र भी स्थान नहीं है। यथा उदाहरण में ५ में मुलहठी के लिये मधुयष्टि शब्द आया है और यष्टि शब्द भी आया है। यहाँ मधु विशेषण को छोड़ कर अकेले यष्टि शब्द का भी मुलहठी अर्थ ही लिया है।

(२) तथा प्राणिवाचक पर्यायवाची शब्द जब वनस्पति के लिए प्रयुक्त होते हैं तब प्राणवाचक पर्यायवाची शब्द का वनस्पति में समानार्थ ही लिया जाता है। जैसे कि (ख) मार्जारी का अर्थ बन्दरी है और वानर का अर्थ बन्दर है। पहला शब्द स्त्रीलिंग है दूसरा पुल्लिंग है। परन्तु दोनों का अर्थ वनस्पतिपरक कौंच के बीज होता है। (ग) कालिंगा का अर्थ- कायर पशु का अर्थ होता है तथा कापिञ्जल का अर्थ कायर पशु होता है। परन्तु ये दोनों पर्यायवाची शब्द वनस्पतिपरक अर्थ में बनकर एक अर्थ के सूचक हो गये हैं। इनका एक ही अर्थ ज्ञातमान होता है।

अब हम यहां पर कुछ और भी उदाहरण देकर स्पष्ट कर देना चाहते हैं —

(१—कुक्कुट) (पुल्लिंग) - कुक्कुट शाल्मली च। (सेमल का वृक्ष)
(वैद्यक शब्दसिंधु)

(२—कुक्कुटी) स्त्रीलिंग—

शाल्मली सूचिनी माचा स्थिरायु विरजा चिरा।
कुक्कुटी पूरणी रक्तकुसुमा पुष्पदम्भा ॥६७॥
(निघण्टुसार)

उपर्युक्त उदाहरणों में हम देखते हैं कि कुक्कुट तथा कुक्कुटी शब्दों का लिंगभेद होते हुए भी ये वनस्पतिपरक अर्थ में पर्यायवाची हैं। दोनों का अर्थ शाल्मली वृक्ष (सेमल का वृक्ष) स्वीकार किया गया है।

(३—करौंदा) करमर्दी वन शाखा करमर्दक करमर्द ।
तस्मात्स्वल्पफला दा नीया मता करमर्दिका ॥
(शालिग्राम निघण्टु भूषण)

(४—शिग्रु) शिग्रुका शिग्रिणी शिग्रो मुखिभंगा प्रमार्जनी।
(शालिग्राम निघण्टु वर्गाप्रथम)

नं० ३,४ उदाहरणों में भी करमर्द पुल्लिंग है तथा करमर्दिका स्त्रीलिंग है। एवं शिग्रिणी स्त्रीलिंग है और शिग्रु पुल्लिंग है, दोनों पर्यायवाची बनकर समानार्थक हैं।

अतः कुक्कुटी मधुकुक्कुटी मधुकुक्कुटिका और कुक्कुट ये सब शब्द पर्यायवाची होने से समानार्थक हैं। इसलिये यहां पर कुक्कुट शब्द का अर्थ बिजौरा है। यह दलील नितान्त युक्तियुक्त है।

बीजौर फल की चार जातियां म स कुछ भेदों में गुण दोषों का वर्णन करते हैं —

(१) बीजारा (निंबू) फल—

श्वासकासारुचिहरं तृष्णाघ्नं कण्ठशोधनम् ॥ १४८ ॥
लघ्वम्लं दीपनं हृद्यं मातुलुङ्गमुदाहृतम् ।
त्वक् तिक्ता दुर्जरा तस्य वातकृमिकफापहा ॥ १४९ ॥
स्वादु शीतं गुरु स्निग्धं मांसमारुतपित्तजित् ॥ १५० ॥

(सुश्रुत संहिता)

अर्थ—निंबू जाति का बीजारा फल—तृष्णाशामक कण्ठशोधक श्वास खांसी अरुचि को मिटाने वाला लघु दीपक और पाचक है।

त्वक (छिलका) तिक्त दुर्जर वात कृमि तथा कफ को शमन करने वाला है।

मांस (गूदा)—वात पित्त को नाश करने वाला है।

(२) बीजारा—मधुकर्कटी (चिकोतरा) फल—

बीजपूरो मातुलुङ्गो रुचकः फलपूरकः ।
बीजपूरफलं स्वादु रसेऽम्लं दीपनं लघु ॥ १३१ ॥
रक्तपित्तहरं कण्ठजिह्वाहृदयशोधनम् ।
श्वासकासारुचिहरं हृद्यं तृष्णाहरं स्मृतम् ॥ १३२ ॥
बीजपूरोऽपरः प्रोक्तो मधुरो मधुकर्कटी ॥
मधुकर्कटिका स्वाद्वी रोचनी शीतला गुरुः ॥ १३३ ॥

(भावप्रकाश)

अर्थ—चिकोतरा जाति का बीजारा फल रक्तपित्तनाशक है, कंठ जिह्वा हृदय शोधक है श्वास खांस तथा अरुचि का शमन करता है तथा तृष्णा हर है। इस बीजारे का दूसरा नाम मधुर मधुकर्कटी अथवा मधुकर्कटिका भी कहते हैं।

(३) बीजारा–मधुकुक्कुटा (जम्बीर) फल–

मधुकुक्कुटिका मधुकुक्कुटी (स्त्रीलिंग) मातुलुङ्ग भर्मे जम्बीर भवे। (वद्यक शब्दसिंधु)

मधुकुक्कुटिका जाता श्लेष्मला अग्निसादिनी।
रुच्या स्वादुगुरु स्निग्धा वात पित्तविनाशिनी॥

तत फल—तच्च फल बाल वात पित्त-कफ रक्तकरम।

मध्य फल—तादृशमव।

पक्व फल—वर्णकर हृद्य पुष्टिकर बलकर शूलहर।
अजीर्णनाशन विबन्ध वातपित्तश्वासाग्निमांद्यहर
कासा ऽरोचकशोफघ्नञ्च॥ (वद्यक शब्दसिंधु)
पक्व तत मधुर कफदमन रक्त पित्तदोषघ्न दव्यम्।
वीर्यवर्धन रुचिकृत पुष्टिकृत तर्पणञ्च॥
राजनिघण्टु तथा वद्यक शब्दसिंधु)

अर्थ–मधुकुक्कुटी (जम्बीर) वातक श्लेष्म करने वाला रोचक, स्वादिष्ट गुरु स्निग्ध वात पित्त का नाश करने वाला है।

जम्बीर फल–कच्चा फल वात पित्त कफ तथा रक्त के रोगों को उत्पन्न करने वाला है। अधपका फल भी कच्चे फल के समान दोषों का करने वाला है।

तथा इसका पका फल सुन्दरता बढ़ाने वाला पुष्टिकर, बलकर शूल की पीड़ा का नाशक अजीर्णनाशक दस्तों को रोकने वाला वात पित्त द्वारा अग्निमांद्य को दूर करने वाला खांसी अरुचि सूजन का नाश करने वाला है।

तथा पका हुआ मीठा फल कफ का दमन करने वाला रक्त पित्त के दोषों का नाश करने वाला वीर्य का निवारण वाला ताप का बढ़ाने वाला रुचिकर पुष्टिकर तर्पण करने वाला है।

सम्मात गर्भ (गूदा)

बृंहण शीतल गुरु रक्तपित्तजिन्मत्। (च० द० वि० व० चि०)

अर्थ—जम्भीर फल का गूदा—शीतल गुरु, रक्तपित्त को नाश करने वाला है।

आयभिषक—वनौषधि गुणादर्श (पृ० ४१२) गुजराती ग्रंथ में मधुकुक्कुटा (जम्बीर) फल के गर्भ के गुणों का इस प्रकार वर्णन है—

'मधुर ग्राही मध्य शीतल बलकर तुरा पुष्टिकारक तथा वज्र कारक है। कफ रक्तपित्त विकार तथा प्रदर को नाश करता है।'

सारांश यह है कि जम्भीर जाति के बाजोरे का कच्चा तथा अधपका फल रक्तपित्त रोग में अत्यन्त हानिकारक है तथा इस का पका फल रक्तपित्त दाहज्वर पित्तज्वर आदि रोगों में लाभदायक है।

पके मीठे फल का गूदा तो इस रोग में अत्यन्त लाभदायक है।

हमने उपर्युक्त तीन प्रकार के बीजोरा फलों के गुण दोषों का वर्णन किया है।

(१) कित्र जाति का बीजोरा फल पित्तनाशक होने से इस रोग में लाभदायक नहीं है। (२) बिजौरा जाति का बीजोरा इस रोग में लाभदायक है तो सही परन्तु इसका दूसरा नाम मधुकर्कटी होने से मधुकुक्कुटी का पर्यायवाची नहीं है क्योंकि यदि दोनों का मधु विशेषण हटा दिया जावे तो कर्कटी तथा कुक्कुटी शब्द रह जाते हैं। यदि इन दोनों शब्दों का सामान्य अर्थ किया जावे तो प्रथम का अर्थ केकड़ा जो कि जल में रहने वाला एक प्राणी है तथा कुक्कुटी का अर्थ मुर्गी होता है। इसके पुल्लिंग कुक्कुट का अर्थ मुर्गा होता है। दोनों का भिन्न अर्थ होने से यही मानना ठीक है कि—भगवतीसूत्र के विवादास्पद पाठ में जो 'कुक्कुड (कुक्कुटी)' शब्द आया है उससे मधुकुक्कुटी अर्थात् जम्बीर फल अर्थ लेना ही उचित है। (३) मधुकुक्कुटी—जम्बीर जाति बाजोरे का मीठा पका फल तथा इस का गूदा रक्तपित्त में सब जाति के बाजोरों से अधिक तथा अत्यन्त लाभदायक है।

२—शाल्मली=सेमल वृक्ष
३—मातुलुंग=बीजोरा (जम्बीर)
४—मुर्गा

(१) यहाँ "कुक्कुट" का पहला अर्थ—सुनिषण्णक नामक शाक भाजी है। यह शाक इस रोग में लाभदायक है अवश्य। यदि यहाँ पर इस शाक की औषधि लेना मान लें तो यहाँ पर "मज्जार" का अर्थ "लटाण" लेना चाहिये। क्योंकि लटाण डालकर भाजी का शाक बनाया जाता है। भाजी का शाक दही डालकर खट्टा करने का रिवाज सब जानते हैं। अर्थात् लटाण की जगह दही लेने में दस्तों का तथा पेचिश की बीमारी में लाभदायक है अवश्य परन्तु भगवान महावीर के रोग के लिये हानिकारक थी। क्योंकि भगवान को पेचिश तथा दस्तों के साथ दाह और पित्तज्वर भी था। ज्वर में दही हानिकारक है। तथा दूसरी बात यह है कि भगवतीसूत्र में भगवान महावीर ने सिंह मुनि से इस औषधि के लिये कहा था कि "पहले से तैयार करके जो औषध रखी है उसे लाना"। सो दही की लटाण डाल कर बनाया हुआ शाक अधिक दिनों तक रख देने से बिगड़ जाता है और खाने लायक नहीं रहता। एवं इस कुक्कुट शब्द के साथ "मंसए" शब्द है। मंसए शब्द का अर्थ है गूदा परन्तु शाक का गूदा नहीं होता। इसलिये यह शब्द शाक भाजी के अर्थ में घटित नहीं हो सकता। इससे फलित होता है कि यह औषध भगवान् महावीर ने नहीं ली।

(२) दूसरा अर्थ है—'शाल्मली' अर्थात् सेमल का वृक्ष होता है। इस वृक्ष का फल होता है तथा इसमें गूदा भी होता है। परन्तु इसका गूदा गर्म होने से इस रोग में लाभदायक नहीं है। अतः यह अर्थ भी यहाँ घटित नहीं हो सकता।

(३) तीसरा अर्थ—बीजोरा फल है। बीजोरा कई प्रकार का होता है। जैसे गलगल, चिकोतरा, संगतरा, मीठा जम्बीर, बिल्व फल इत्यादि। यहाँ पर बीजोरे से जम्बीर फल अभीष्ट है, क्योंकि अन्य बीजोरों की अपेक्षा इस रोग के लिये जम्बीर बीजोरे का पका हुआ

मीठा फल ही अत्यंत लाभदायक है। तथा कुक्कुट (मातुलुंगी) शब्द का अर्थ जम्बीर नामक फल ही होता है। इसके फल में गुण भी होता है। यह गण इन सब रोगों पर अत्यन्त लाभदायक है। अर्थात 'कुक्कुट मांस'[1] का अर्थ बीजौर (जम्बीर) फल के गूदे से तैयार किया गया पाक मुरब्बा होता है। तथा प्राचीन टीकाकारों ने एवं धर्मशास्त्रों ने और कलिकालसर्वज्ञ श्री हेमचन्द्राचार्य आदि गीतार्थ आचार्यों ने भी इसका यही अर्थ स्वीकार किया है। यह मुरब्बा कई दिनों तक सुरक्षित रहता है बिगड़ता नहीं।

(४) चौथा अर्थ यदि मुर्गे का मांस किया जावे तो यह मांस इस रोग में बहुत हानिकारक होने से इस रोग में कदापि लाभकारी नहीं हो सकता था। देखिये —

मुर्गे के मांस के गुण-दोष—

(क) मुर्गे का मांस स्निग्ध गुरु उष्ण वृष्य कफवर्धक शक्तिप्रद आँखों के लिए लाभकारी तथा वायु को नष्ट करता है।

(वनौषधि निघण्टु उप वनौषधि चन्द्रोदय)

(ख) 'स्निग्ध उष्ण गुरु रक्तपित्तजनक वातहर च मांसं।
सर्वमांसं वातविध्वंसि वृष्यं॥'

अर्थात्—मुर्गे का मांस चिकना भारी गरम कफ को बढ़ाने वाला, ताकत बढ़ाने वाला रक्तपित्त को पैदा करने वाला और वायु को दूर करता है। सब मांस भारी और वात को नाश करते हैं।

मतलब यह है कि यह भारी स्निग्ध पदार्थ भगवान के रक्तपित्त विकार पैदा होता है इस रोग में वृद्धि होती है और रोगी को बहुत

१—'मांस' शब्द नपुंसक लिंग है। परन्तु मांसक शब्द पुल्लिंग है और बीजोरा शब्द भी पुल्लिंग है। एवं मांसक शब्द का अर्थ फल का गूदा अथवा पाक मुरब्बा ही है। उसी प्रकार ऊपर लिख भी आये हैं। इसलिये यहाँ पर कुक्कुट मांस का अर्थ बीजोरा पाक ही होता है। इसमें सन्देह की कोई गुंजाइश नहीं है।

हानिकारक है। फिर वह पदार्थ चाहे वनस्पतिपरक हो चाहे मांसपरक। तुलना कीजिए —

बादाम वनस्पति है। उसकी मज्जा (गिरी) के गुण-दोष भी मुर्गे के मांस की तुलना करते हैं इसलिए इस व्याधि में इस रोग में हानिकारक हैं। इसलिए त्याज्य हैं।

(ग) "वातादमज्जा मधुरा वृष्या पित्तानिलापहा।
स्निग्धोष्णा कफकृन्नेष्टा रक्तपित्तविकारिणाम् ॥१२५॥
(भावप्रकाश निघण्टु)

अर्थ—बादाम की मज्जा (गिरी) मीठी पुष्टिकारक वात का नाश करने वाली गुरु अम्ल गुणयुक्त स्निग्ध उष्णवीर्य और कफ करने वाली होती है इसका सेवन रक्तपित्त के रोगियों को हानिकारक है।

इस उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि मुर्गे का मांस उष्णादि गुण वाला होने से रक्तपित्त रोग दाहज्वर पित्तज्वर अतिसार तथा पेचिश आदि रोगों की शान्ति के लिए कदापि उपयुक्त नहीं हो सकता है।

हम लिख आये हैं कि मार्जार के (१) हिंगोट का वृक्ष (२) अगस्त्य का वृक्ष, (३) अगस्ति की शिम्बा (४) लवंग आदि अनेक अर्थ होते हैं। इन हिंगोट (इंगुदी) अगस्त्य और अगस्त्य की शिम्बा इस रोग को शमन करने के लिये उपयोगी हैं क्योंकि ये त्रिदोष नाशक हैं। वायु को शमन करने का भी इन में गुण हैं। किन्तु 'लवंग' में वायु त्रिदोष नाशक गुण होने के साथ-साथ अनेक ऐसे विशिष्ट गुण भी विद्यमान हैं, जो इस रोग में अत्यन्त उपयोगी हैं तथा विवादास्पद सूत्रपाठ की टीका में श्री अभयदेवसूरि ने लिखा है 'मार्जारो विरालिकाभिधानो वनस्पतिविशेष-स्तेन कृतं भावितम् ॥

अर्थात्—बरालक नाम की औषधि विशेष से भावना दी (संस्कारित की) हुई। सो 'बरालक' नाम की औषधि निघण्टकारों ने लवंग को माना है। लवंग के गुणों का वर्णन हम पहले लिख चुके हैं। लवंग का पुट देना तथा संस्कारित करना अम्बीर फल के गूदे के साथ इसलिये आवश्यक है

कि जम्बीर फल का गूदा वायु कर्ता है। और वायु इस रोग में हानिकारक है। लवण में वायु को शमन करने का गुण विद्यमान है। मात्र इतना ही नहीं किन्तु इस रोग के अनेक लक्षणों का निदान भी है।

अतः 'मज्जारकडए' शब्द का अर्थ हुआ कि विराल्का नाम की वनस्पति से संस्कारित किया हुआ।

अब मज्जारकडए कुक्कुडमंसए शब्दों का नीचे लिखा अर्थ स्पष्ट हो जाता है—

वायु[1], रक्तपित्त, पैत्तिक अतिसार दाह पित्तज्वर आदि रोगों को शांत करने के लिये, वराल्क (लवण) नामक वनस्पति से संस्कारित बीजोरे (जम्बीर) फल के गूदे का पाक (मुरब्बा)।

(१२) भगवतीसूत्र के विवादास्पद सूत्रपाठ का वास्तविक अर्थ —

भगवतीसूत्र का मूल पाठ —

तं गच्छह णं तुमं सीहा! मेंढियगामं नगरं रेवतीए गाहावइणीए गिहे तत्थ णं रेवतीए गाहावइणीए ममं अट्ठाए दुवे कवोयसरीरा उवक्खडिया तेहिं नो अट्ठो अत्थि से अन्ने पारियासिए मज्जारकडए कुक्कुडमंसए तमाहराहि एएणं अट्ठो।

इस उपर्युक्त सूत्रपाठ का वास्तविक स्पष्टार्थ यह है—

'(श्रमण भगवान महावीर ने अपने शिष्य सिंह मुनि से कहा) हे सिंह! तुम मेंढिक ग्राम नगर में गृहपत्नी रेवती (श्राविका) के घर जाओ। उसने मेरे लिये दो [illegible]

१—भगवान महावीर को तीन प्रकार के [illegible] रक्तपित्त रोग था। यह रोग वायु प्रकोप से [illegible] अतः वायु का दमन करने से रक्तपित्त [illegible]

२—यद्यपि इस वनस्पतिपरक औषध [illegible] मौजूद थे तो भी जैन निर्ग्रन्थ श्रमण के [illegible] निर्ग्रन्थ श्रमण उस ग्रहण नहीं कर सकते [illegible]

फल पका कर तयार किये हैं उनकी मा आवश्यकता नहीं है (आधाकर्मी होने यतः होन य) । पर उसके वहां कुछ दिन पहले मार्जार (लवग) नामक वनस्पति स मस्कारित (भावना दिये हुए) बीजोरे (जम्बीर) पाक के गूद स तयार किया हुआ औषधीय पाक (मरब्बा) पड़ा हुआ है (जो कि उसने अपने घर के लिये बना कर तयार करके रखा है) उस की आवश्यकता है। उसे ले आओ।

यहां अर्थ प्राचीन टीकाकारों तथा चूर्णिकारों ने किया है, जो कि उपयुक्त विवेचन से सर्वथा ठीक प्रमाणित हो जाता है। अब —

(१) अध्यापक धर्मानन्द कोसाम्बी द्वारा इस सूत्रपाठ का अर्थ किया गया है कि —

उस समय महावीर स्वामी ने सिंह नामक अपने शिष्य से कहा— तुम मेंढिक गांव में रेवती नामक स्त्री के पास जाओ। उस ने मेरे लिए दो कबूतर पका कर रखे हैं। वे मुझे नहीं चाहिये। तुम उससे कहना— कल बिल्ली द्वारा मारी गयी मुर्गी का मांस तुमने बनाया है उसे दे दो।'

पाठक समझ गये होंगे कि कोसाम्बी जी द्वारा स सूत्र पाठ का किया गया अर्थ कितना असंगत अघटित अनुचित और भ्रांतिपूर्ण है। बिल्ली द्वारा मारी गयी मुर्गी एसी अस्पृश्य तथा घृणित वस्तु को रेवती जैसी बारह व्रत धारिणी उत्कृष्ट श्राविका अपने घर लाकर और उसे पका कर तयार करे तथा रक्तपित दाह रोग की शान्ति के लिये एसी वस्तु का प्रयोग उचित मान लिया जाय ये सब मान्यताएं अप्रासंगिक वास्तविकता से दूर तथा कपोलकल्पित जचती हैं।

(२) तथा भसए और कडुए शब्द का पुल्लिंग प्रयोग भी प्राप्यगत

बनाया हुआ निग्रन्थ श्रमणों को लेने के लिये भगवान महावीर स्वामी ने मना किया है (सोमिल ब्राह्मण तथा भगवान् महावीर स्वामी के सम्वाद से हमने इस बात को स्पष्ट मान किया है) एसी अवस्था में स्वयं श्रमण भगवान् महावीर स्वयं भी इस ग्रहण नहीं कर सकते थे क्योंकि कूष्माण्ड पाक उन के लिये बनाया गया था।

य खण्ड

महार

तृतीय खण्ड

उपसहार

(१) सामान्य रूप से सबसे प्राचीन ऋग्वेद संहिता में आमिष [illegible] का प्रयोग ही नहीं मिलता इतना ही नहीं बल्कि प्राचीन वैदिक निघ[illegible] में भी मांस अथवा इसके किसी पर्याय का नाम नहीं मिलता। इसका कारण यह तो नहीं हो सकता कि उस समय मांस पदार्थ ही न होता, मनुष्य पशुओं के शरीर में रक्त वाली धातुओं में से [illegible] समय भी विद्यमान था। प्राचीन वेद तथा उसके प्राचीन शब्द [illegible] उसका उल्लेख न होने का कारण यही है कि तत्कालीन [illegible] प्राणिजन्य मांस को किसी कार्य में उपयोग नहीं करते थे। [illegible] बनाया हुई वैदिक [illegible] शाखाओं में मांस [illegible] निघण्टुओं में लिखने की आवश्यकता थी। [illegible] में कुछ सूक्तों में मांस [illegible] का प्रयोग हुआ है परन्तु [illegible] पीछे से जोड़ दिए गए हैं ऐसा अनेक [illegible] है।

शुक्ल यजुर्वेद के अन्तिम प्रकरण में अनेक [illegible] है जो इस संहिता के रचयिता विद्वान याज्ञवल्क्य [illegible] का परिणाम है। इससे [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] थी था परन्तु अथर्ववेद के [illegible] [illegible] पड़ा था। अथर्ववेद में [illegible] है, परन्तु इस वेद के [illegible] है। इससे [illegible] कि भाष्यकार [illegible] मांसभक्षण मर्यादित हो गया था। [illegible] का [illegible] की है [illegible] प्राणिज मांस [illegible] लागू होती है। [illegible] के [illegible]

पिष्टान आदि से बनाये गये मिष्टान्न भोजन के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है। मांस शब्द की व्याख्या करते हुए आचार्य यास्क कहते हैं —

मांसं माननं वा मानसं वा मनोऽस्मिन् सीदति वा।'

अर्थ—मांस कहो, मानन कहो, मानस कहो, ये सब एक ही अर्थ के प्रतिपादक पर्याय हैं और ये उस भोजन के नाम हैं जो आगन्तुक माननीय महमान के लिए तैयार किया जाता था और वह समझता था कि मेरा बड़ा मान किया गया है।

'मन ज्ञाने' इस धातु से मांस शब्द निष्पन्न हुआ है और इसका अर्थ होता है बड़े आदमी के सम्मान का साधन।

पुरातत्त्ववेत्ता विद्वानों ने आचार्य यास्क का समय ईसा पूर्व नवम शताब्दी निश्चित किया है। इससे यह सिद्ध होता है कि आज से तीन हजार वर्ष पूर्व के वैदिक साहित्य में मांस शब्द वनस्पतिनिष्पन्न खाद्य के अर्थ में प्रयुक्त होता था।

इस के बाद धीरे धीरे मधुपर्क और पिष्टपशु में प्राण्यंग मांस का प्रयोग होने लगा। बोधायन गृह्यसूत्र में जो कि ईसा पूर्व छठी शताब्दी की कृति मानी जाती है—यह आग्रह किया गया है कि मधुपर्क में प्राण्यंग मांस अवश्य होना चाहिए यदि पशु मांस न मिले तो पिष्टान्न का मांस तैयार कर काम में लिया जाए।

'आरण्येन वा मांसेन ॥५२॥ न त्वेवामांसोऽर्घ्यः स्यात् ॥५३॥ अशक्तो पिष्टान्न संसिद्धयेत ॥५४॥

अर्थ—(गौ के उत्सर्जन कर देने पर अन्य ग्राम्य पशुओं के अभाव में) आरण्य पशु के मांस से अर्घ्य किया जाय क्योंकि मांस बिना का अर्घ्य होता ही नहीं। यदि आरण्य मांस की प्राप्ति न कर सकें तो पिष्टान्न से उस (मांस का) तैयार करें।

उपनिषदों में भी मांस तथा आमिष शब्द प्रयुक्त हुए दृष्टिगोचर होते हैं, परन्तु वहाँ सभी जगह में वनस्पति खाद्य पदार्थ का अर्थ प्रतिपादन किया गया है। उपनिषद् वाक्य कोश में लिखा है—

"मांसमृद्गीय ।" "यो मध्यमन्त मांसम ।"

अर्थ—माग के गुण गाओ । जो भीतर का सार भाग है ।

उक्त उद्धरणों से भली भांति प्रमाणित हो जाता है कि वैदिक प्राचीन साहित्य में अति पूर्व काल में माम—आमिष आदि शब्द वनस्पति भागों के अर्थ में प्रयुक्त होते थे और भारत में पशुवध की प्रवृत्ति बढ़ने के समय में इन शब्दों का ध्यान प्राणियों में प्रयुक्त होने वाला अर्थ तिरोहित हो गया और प्राण्यंग माम ही माम शब्द का वाच्यार्थ बन गया।

जिस समय में अब कि मास तथा आमिष शब्द केवल प्राण्यंग मास बन चुके थे उस समय भी आमिष शब्द कई अर्थों में प्रयुक्त होता था। ऐसा ही मिथ ग्रन्थ में निम्नलिखित प्राचीन श्लोकों से ज्ञात होता है।

"प्राण्यंगचूर्ण चर्मस्थाम्बु जम्बीर बीजपूर यज्ञशेषभिन्न विध्वस्त निवेदितान दग्धान्न मसूर मांस चाष्टविधमामिष वर्जयेत।"

अन्यत्र तु 'गव्याजामहिष्यादुग्ध पयु विनाम्न द्विजस्य क्रीता रसा भूमिलवणं ताम्रपात्रस्थगव्य पल्वलजल स्वार्थपक्वमन्नमित्यामिष गण उक्त ॥

अर्थ—प्राणधारी के किसी भी अंग का चूर्ण चमड़े में भरा हुआ पानी जम्बीर फल बीजारा यज्ञ के अतिरिक्त विष्णु को निवेदित नहीं किया हुआ अन्न जला हुआ अन्न मसूर धान्य और मांस इन आठ पदार्थों का समुदाय आमिषगण कहलाता है। मतान्तर से आमिष गण—गाय बकरी भैंस के दूध को छोड़कर अन्य जानवरों का दूध बासी अन्न ब्राह्मण से खरीदा हुआ रस कमीन जमीन पर के खारे से तयार किया नमक ताम्रपात्र में रखे हुए पांच गव्य छोटे गड्ढे में रखा हुआ जल, आत्मार्थ पकाया हुआ भोजन यह दूसरे प्रकार का आमिषगण है।

उपयुक्त दोनों आमिषगणों में आमिष शब्द अभक्ष्य अथवा अग्राह्य पदार्थों में प्रयुक्त हुआ है। इससे ज्ञात होता है कि धर्मसिंधु गत उपयुक्त दो सूत्रों के निर्माण समय से पहले ही वैदिक साहित्य में आमिष

...का अच्छा भोजन यह अर्थ भूला जा चुका था। यही कारण है कि उक्त पदार्थों का आमिष का नाम देकर वर्जित बताया गया है। (मा० भो० मी० क० वि०)

(२) आयुर्वेद जैन तथा बौद्ध आदि के प्राचीन ग्रंथों में आमिष, मांस मत्स्य, आस्थिक आदि शब्दों का प्रयोग वनस्पतियों तथा पकवानों आदि खाद्य पदार्थों के लिये किया गया मिलता है। इसका विवेचन हम द्वितीय खण्ड में विस्तृत कर आये हैं। तत्पश्चात धीरे धीरे इन शब्दों का प्रयोग प्राण्यंगों

---

१ पंचमांग भगवतीसूत्र में इस चर्चास्पद सूत्र पाठ के वनस्पतिपरक अर्थ के समान ही आचारांग दशवैकालिक आदि के चर्चास्पद सूत्र पाठों के भी वनस्पतिपरक अर्थ हैं। जैनागमों में आये हुए चर्चास्पद शब्दों के प्राण्यंगों के अतिरिक्त निरामिष अर्थ प्राचीन भारतीय साहित्य में सप्रमाण यहाँ दिये जाते हैं। ये शब्द अट्ठि अट्ठिय आमिष कच्छ मच्छ मंस मज्ज आदि हैं।

अर्द्धमागधी	संस्कृत	निरामिषार्थ	स्थल
१ अट्ठि	अस्थि	बीज गुठली ...	कौटिलीय अर्थशास्त्र पृ० ११८ सुश्रुत संहिता
२ अट्ठिय	१ अस्थिक	१ जिसमें बीज न बना हो ऐसा अपरिपक्व फल गुठली वाले बेर आम आदि फल	बृहदारण्यकोपनिषद अ० १ पण्णवणा सूत्र
	२ आर्थिक	२ मांस का कारण	
आमिष	आमिष	१ आहार फलादि भोज्य वस्तु	उत्तराध्ययन १ पचा० ६

मनस्तरगो तथा पकवानों आदि मे समान रूप से होने लगा। उस समय ब्राह्मण मोम हुवे मनुष्यों तथा क्षत्रियो आदि शिकारी जातियों का खाद्य अवश्य बन गया था। वे विहित यज्ञों मे पशु बली की प्रथा के कारण ब्राह्मण मांस जो यज्ञो मे यज्ञो से बनता था वह भी धमश्रद्धा से खाद्य बनता जा रहा था। तथापि जन श्रमण एवं जैन श्रमणोपासक गृहस्थ (श्रावक) इसका आहार कदापि न करते थे। किन्तु जन तीर्थकर भगवान नेमिनाथ ने राजा उग्रसेन के यहाँ भोजनार्थ बांध गये पशुओ को अभय दान दिलाया तथा भगवान महावीर स्वामी ने पशुओ व यज्ञो का घोर विरोध किया। यह सब कुछ होने पर भी गौतम बुद्ध ने भगवान महावीर स्वामी के समान ही हिंसक यज्ञो का विरोध किया। किन्तु तथागत गौतम बुद्ध एवं उनके भिक्षुओं म ब्राह्मण मत्स्य मांस आदि का भक्षण होने लग गया था। ईसा की प्रथम

		२ नवेद्य मिष्टान्न पकवान	संबोध प्रकरण
		३ आमिष पूजा—नवेद्य पूजा	धमरत्न करंडक (वर्धमान सूरिकृत)
		४ जम्बीर फल बिजोरा जला हुआ अन्न मधुर धान्य गाय भैंस बकरी के दूध के सिवाय अन्य दूध। नाना प्रकार अन्न लिये पकाया हुआ भोजन इत्यादि।	धम बिन्दु
८ कटय / वटग	कटर	१ कांटा २ नख	द० १ विपाक १,८

शताब्दी के बाद मांस शब्द जो पिष्ट से निष्पन्न मिष्टान्न तथा फल गर्भ के अर्थ में प्रयुक्त होता था वह धीरे धीरे भूला जाने लगा। ईसा की प्रथम शताब्दी से पूर्व निर्मित जैनागमों तथा ग्रन्थों में मांस आदि शब्द वनस्पतियों तथा पक्वान्नों के अर्थ में ही प्रयुक्त हुए हैं। इसके बाद के जैन ग्रंथों में मांस और पुद्गल शब्दों का प्रयोग प्राण्यंग मांस के रूप में भी प्रयुक्त होने लगा।

(३) जैनागमों में आये हुए विवादास्पद सूत्र पाठों का वास्तविक अर्थ समझने के लिये यह आवश्यक है कि जैनागमों की रचना का इतिहास भी जाना जाय ताकि स्पष्टार्थ समझने में सुगमता प्राप्त हो।

५	कंटय बोदिया—कंटक शाखा		२ दुःखोत्पादक वस्तु १ कांटों वाली वृक्ष शाखा	उत्तराध्ययन १ आचारांग २ १ ५
	मच्छ	मत्स्य	१ मत्स्याकृति के बनाये हुए उड़द की पीठी के पक्वान्न कोद्रव धान्य के तंदुल, व्रीहि के तंदुल	क्षेम कुतूहल कौटिलीय अर्थशास्त्र अ० २८ पृष्ठ ११७
		मादयति अनेन इति मत्स्य।	नशा करने वाले धान्य	
	मच्छंडिया	मत्स्यंडिका	अण्ड शर्करा—एक प्रकार की शक्कर	पण्ह० २ ४ णाया०
६	मंस	मांस	१ फलियों का गूदा फल का गूदा मेवों का गूदा	वृहदारण्यकोपनिषद् सुश्रुत संहिता

भगवान् महावीर स्वामी ने अपनी ४२ वर्ष की आयु में ईसा पूर्व ५५७ वर्ष में केवल ज्ञान प्राप्त कर पावन सिद्धान्तों का सार्वत्रिक प्रचार करना आरम्भ किया और ईसा पूर्व ५२७ वर्ष में निर्वाण (मोक्ष) पाने तक लगातार जो ३० वर्षों तक उपदेश दिया उस उपदेश को उनके मुख्य शिष्यों—गणधरों ने सूत्र रूप में गुंथन किया और उन्हें द्वादशांगों—बारह अंगों (शास्त्रों) में संगृहीत कर अपनी शिष्य परम्परा में द्वारा के रूप पठन-पाठन चालू रखा। भगवान् महावीर स्वामी के बाद इस द्वादशांगी के आधार से पूर्वविद् आचार्यों ने समय समय पर जिन शास्त्रों की रचना की वे आगम तथा प्रकरणों के नाम से प्रसिद्ध हुए। भगवान् महावीर स्वामी द्वारा उपदिष्ट द्वादशांगी अंग प्रविष्ट तथा उसके आधार से रचे गये शास्त्र

		२	गरिष्ठ खाद्य पदार्थों में प्रथम नम्बर का खाद्य पदार्थ जो घी शक्कर पाटी आदि से बनाया जाता है उसमें केसर अथवा लाल पदार्थ का रंग दिया जाता है।	अनर्थार्थ संग्रह कोष
७	मज्ज	१ मज्जन	स्नान करना, डूबना	पा० ६ १०१
		२ मद्य	शराब, मद्य	भार
		३ मृज	साफ करना, माजन करना	पद प्राकृ० हे०

अध्यापक रामास्वामी ने भगवान बुद्ध नामक पुस्तक में जैनागमों—दशवैकालिक तथा आचारांग के जिन सूत्र पाठों के उद्धरण देकर यह सिद्ध करने की चेष्टा की है कि जैन साधु प्राणरंग मांस लेते थे वहाँ सब अर्थ वनस्पतिपरक हैं। उन सूत्र पाठों के पूर्वापर सम्बन्ध से यह बात स्पष्ट है।

समूह आगमाह्य के नाम से कहे जाते हैं। भगवान महावीर स्वामी के ग्यारह गणधरों में से नव तो भगवान् महावीर की जिन्दगी में ही निर्वाण (मोक्ष) को पा गये थे। जिस रात्रि को भगवान महावीर ने निर्वाण पाया था उसी रात्रि को उनके प्रथम गणधर श्री इन्द्रभूति गौतम को केवल ज्ञान हो जाने से एक मात्र पांचवें गणधर श्री सुधर्मा स्वामी उस समय भगवान महावीर के चतुर्विध संघ (साधु साध्वी श्रावक-श्राविका) रूप तीर्थ के नेता (संघ नायक आचार्य) संरक्षक थे। जैन श्रमण बाह्याभ्यंतर परिग्रह के सर्वथा त्यागी होने से उन्हें निर्ग्रन्थ (निगंठ अथवा निग्गंथ) के नाम से संबोधित किया जाता था। वे निर्ग्रन्थचर्या के पालन के लिये अत्यावश्यक कतिपय उपकरणों के सिवाय अपने पास अन्य कोई भी पदार्थ नहीं रखते थे तथा उस समय केवली गणधर एवं द्वादशांगी (ग्यारह अंग तथा चौदह पूर्वों) के ज्ञाता गीतार्थ जैन श्रमण संघ विद्यमान होने से भगवान महावीर की वाणी को लिखने की आवश्यकता नहीं समझी गया। भगवान महावीर के बाद १७० वर्षों तक श्री भद्रबाहु स्वामी तक द्वादशांगी को निर्ग्रन्थ श्रमणों ने बराबर कंठस्थ याद रखा इसलिये उस ज्ञान में कमी नहीं आयी। श्री स्थूलभद्र जी जो आचार्य भद्रबाहु स्वामी के समकालीन तथा उनके बाद उनके पट्टधर आचार्य नियुक्त हुए वे ग्यारह अंगों तथा दस पूर्वों के अर्थ सहित ज्ञाता एवं चार पूर्वों का मूल सूत्र पाठ से जानते थे। उस समय अनेक अन्य निर्ग्रन्थ भी इतने ज्ञान के ज्ञाता थे। यह समय ईसा पूर्व चौथा शताब्दी ठहरता है। आर्य सुहस्ती, आर्य महागिरि महाराजा सम्प्रति के समय हुए (ई० पू० २२०)। फिर ईसा पूर्व दूसरा शताब्दी (ई० पू० १७४) में जैन सम्राट कलिंगाधिपति खारवेल ने अपनी मगध विजय के बाद अपनी राजधानी में एक धर्म सम्मेलन किया। उस समय निर्ग्रन्थ श्रमण बहुत संख्या में पधारे। वहाँ उन सब ने जैनागमों की वाचना की और उन्हें व्यवस्थित किया।' ऐसा हाथी गुफा के शिलालेख से ज्ञात होता है। इसी प्रकार बीच बीच में एक दो शताब्दियों के बाद निर्ग्रन्थ श्रमण किसी न किसी स्थान पर एकत्रित

होकर जैनागमों का परस्पर निरन्तर वाचन करके उन को सुरक्षित रखते रहे। ईसा की प्रथम शताब्दी में ... स्वामी हुए तब तक ग्यारह अंग तथा पूर्वों का ज्ञान क्रमबद्ध सुरक्षित रहा। इसके बाद काल के स्वभाव से बुद्धि मन्द हो जाने के कारण से निर्ग्रन्थ श्रमण आगम पाठ भूलने लगे। भगवान महावीर स्वामी के ... पाट पर श्री मङ्गिलाचार्य हुए उस समय बारह वर्षीय दुष्काल पड़ने के कारण जैन श्रमणों को अंग उपांग भी पूर्ण रूप से याद न रहे। ... पर मथुरा में स्कन्दिलाचार्य की अध्यक्षता में जैन श्रमणों का फिर एक बृहत्सम्मेलन हुआ। उस समय निर्ग्रन्थ श्रमण संघ ने एकत्रित होकर जिस साधु को जिस शास्त्र का जितना पाठ कण्ठस्थ याद था वह लक्ष्य करके जैनागमों का पुनः सङ्कलित किया गया। इसी से इस माथुरी वाचना कहते हैं। यह समय लगभग ईसा की दूसरी-तीसरी शताब्दी का ठहरता है। इस प्रकार बीच-बीच में एक या दो शताब्दियों के बाद निर्ग्रन्थ श्रमण अपना सम्मेलन करके जैनागमों के अंग कण्ठस्थ ज्ञान का पुनर्वाचन करके उन्हें व्यवस्थित रखते आये। अन्त में काल के स्वभाव से जब स्मरणशक्ति में अधिक कमी आने लगी और सूत्र पाठ विस्मरण होते गये। तब ईसा की पाँचवीं शताब्दी में (भगवान महावीर स्वामी के निर्वाण के ९८० वर्ष बाद) वल्लभी नगरी में समस्त निर्ग्रन्थ श्रमणों का एक बृहत्सम्मेलन हुआ। इस सम्मेलन के अध्यक्ष जैनाचार्य देवर्द्धिगणि क्षमाश्रमण थे। यह उस समय के युग प्रधान और मुख्याचार्य थे। सम्मेलन में जिस-जिस साधु को आगमों के जो-जो पाठ कण्ठस्थ याद थे उनका वाचन हुआ। वाचना के पश्चात् उन्हें मालूम हुआ कि चौदह पूर्व पूर्ण भूले जा चुके हैं। बाकी के ग्यारह अंगों के भी कुछ भाग विस्मरण हो चुके हैं। इस निर्ग्रन्थ ... के सामने विकट समस्या उपस्थित थी। यदि इस समय बचे हुए इस कण्ठस्थ आगम ज्ञान को लिपिबद्ध न किया गया तो कालान्तर में इस को भूल जाने से भगवान् महावीर की द्वादशांगी वाणी का ... हो जायगा और यदि लिखा जाता है तो इस काल

का स्वय निष्पन्न करना होगा। यदि ऐसा ही आवश्यक है तो श्री निग्रन्थ-श्रमणसंघ को संयम पालन के निमित्त अपने उपकरणों में लेखनी, स्याही, ताडपत्र इत्यादि की वृद्धि करनी पड़ेगी। अन्त में द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव का विचार करके जिससे अहित का परिहार तथा हित का लाभ हो ऐसे उत्सर्ग-अपवाद रूप स्याद्वाद की दृष्टि का लक्ष्य में रखते हुए उस समय एकत्रित हुए निग्रन्थश्रमणसंघ ने सर्वसम्मति से इस कठस्थ ज्ञान को लिपिबद्ध करके पुस्तकारूढ़ करने का निर्णय किया। इस निर्णय के अनुसार श्री देवर्द्धिगणि क्षमाश्रमण की अध्यक्षता में जो-जो आगम पाठ जिस जिस निग्रन्थ श्रमण को याद थे उन सब को बिना किसी फेर फार के ताडपत्रों पर लिख कर लिपिबद्ध किया। भगवान महावीर के समय से लेकर इस समय तक जितने आगमों प्रकरणों की रचना हुई थी, फिर वे चाहे अंगप्रविष्ट थे या अंगबाह्य थे उन का जितना जितना भाग याद था सब संगृहित कर लिया गया। अर्थात् ईसा पूर्व छठी शताब्दी से लेकर ईसा की पांचवी शताब्दी तक के जैन साहित्य को लिपिबद्ध करके लिख लिया गया। तत्पश्चात् इस आगम साहित्य पर निर्युक्ति चूर्णि भाष्य टीकाएं आदि लिखे गये। तथा अनेकविध नवीन साहित्य की रचना भी होती आ रही है। इससे यह स्पष्ट है कि जैनागमों में जो कि इस समय विद्यमान है उन की मूल भाषा वही कि भगवान महावीर स्वामी ने अपने श्रीमुख से दिव्य ध्वनि द्वारा अपनी देशना (उपदेश) में कही थी वही भाषा बिना किसी फेर फार के सुरक्षित है।

(४) इन जैनागमों पर टीकाएं आदि लिखने वाले टीकाकार समर्थ विद्वान थे, जैन सिद्धान्तों तथा आचारों के जानकार एवं प्रतिपालक थे। उनके रोम रोम में जैनधर्म का अनुराग भी था। ऐसा होते हुए भी वे छद्मस्थ थे और इन आगमों पर टीकाओं की रचनासमय तक तो इन विवादास्पद शब्दों के प्राचीन अर्थ प्रायः भूले जा चुके थे तथा इनके नवीन अर्थ प्राण्यर्गों के रूप में प्रचार पा चुके थे। इसलिए शब्द कोशकारों ने भी अपने नवीन शब्द कोषों में इन शब्दों के अर्थ को प्राण्यंग रूप में लिखा। यह बात

भाषाशास्त्रियों से छिपी नहीं है। ऐसी हालत में इन विवादास्पद सूत्र-पाठों के अर्थ में मतभेद होना स्वाभाविक था। जिन्हें तो प्राचीन गुरु परम्परा द्वारा किये जाने वाले अर्थ ज्ञात था वे तो इन शब्दों का अर्थ वनस्पतिपरक तथा पक्वान्नादि खाद्य पदार्थ करते थे और जो उन प्राचीन अर्थों को भूल चुके होंगे और उस समय के प्रचलित अर्थ करते होंगे वे इन शब्दों का अर्थ प्राणियों का समझने लगे हों तो इसमें कोई आश्चर्य की बात नहीं है। यदि कोई भी आचार्य अपनी छद्मस्थावस्था के कारण प्राचीन समय से किये जाने वाले अर्थों के बदले मांसपरक अर्थ समझने लगे हों तो भी जब वे जैन आचार विचारों के साथ तुलना करेंगे तो उन्हें इस बात का विस्मय हुए बिना नहीं रहता होगा कि नवकोटिक अहिंसा के प्रतिपादक तथा उपदेशक निर्ग्रन्थ ज्ञातपुत्र (श्रमण भगवान महावीर) तथा निर्ग्रन्थ श्रमणों के आचार सम्बन्धी सूत्र पाठों में इन मांसनिष्पन्न पदार्थों के व्यवहार का आना क्या?

जैनाचार्यों ने शब्द से भी अर्थ को अधिक महत्त्व दिया है। इसके मूल को खोजा जाय तो पता लगता है कि जैन मान्यता के अनुसार तीर्थंकर तो केवल अर्थ का उपदेश देते हैं। शब्द गणधर के होते हैं। अर्थात् मूलभूत अर्थ है न कि शब्द। वैदिकों में तो मूलभूत शब्द है उसके बाद उसके अर्थ की मीमांसा होती है। इसलिये जैनधर्म के अनुसार मूलभूत अर्थ है शब्द तो उसके बाद आता है। यही कारण है कि सूत्रों के शब्दों का उतना महत्त्व नहीं जितना उनके अर्थों का है। इसी लिये जैनाचार्यों ने शब्द का उतना महत्त्व नहीं दिया जितना कि अर्थों को दिया और फलस्वरूप शब्दों को छोड़ कर वे तात्पर्यार्थ की ओर आगे बढ़ने में समर्थ हुए। शब्द का केवल एक प्रसिद्ध अर्थ करना 'भाषा' है एवं उससे अधिक अर्थ करना विभाषा है, तथा यावत् अर्थ का देना वार्तिक है।

आचार्य अपनी ओर से सूत्रों की व्याख्या करते हैं, किन्तु उस व्याख्या का तीर्थंकर अर्थों का किसी भी आज्ञा से विरोध नहीं होना चाहिए।

तीर्थंकर देव की आज्ञा के विरोध में अपनी आज्ञा देने का अधिकार आचार्य को नहीं है। क्योंकि तीर्थंकर और आचार्य की आज्ञा में बलाबल की दृष्टि से तीर्थंकर देव की आज्ञा ही बलवती मानी जाती है आचार्य की नहीं। अतएव तीर्थंकर देव की आज्ञा की अवहेलना करने वाला व्यक्ति अविनय एवं गर्व के भाव से दूषित माना गया है। जिस प्रकार श्रुति और स्मृति में विरोध होने पर श्रुति ही बलवान मानी जाती है, उसी प्रकार तीर्थंकर की आज्ञा आचार्य की आज्ञा से बलवती है।

यही कारण है कि प्रथमांग आचारांग के टीकाकार श्री शीलांकाचार्य तथा दशवैकालिक आगम के टीकाकार श्री हरिभद्रसूरि ने मूल पाठों में आने वाले इन विवादास्पद शब्दों के अर्थ जैनागम के मूलभूत सिद्धान्तों के अनुकूल करने के लिये अपनी बुद्धि का ठीक ठीक उपयोग करने में कोई कसर नहीं उठा रखी। पृथ्वी पानी आदि छः काय जीवों की दया पालने वाले कीडियों की करुणा के लिये कडवी तुम्बी का आहार करने वाले तथा अपने मान्य तीर्थंकर देवों के सिद्धान्त को पालन करने के उपलक्ष में पांच पांच सौ एक ही समय में घानी में पीले जाने पर भी हंसते हंसते अपने प्राणों की आहुति देने वाले जैन निर्ग्रन्थ अनिवार्य मार्गों में भी मांस मछली आदि का भक्षण करें, ऐसी बात उन के गले भी न उतरी। तथा जिस प्रकार इन सूत्रों के विवादास्पद भागों को आजकल के कुछ विद्वान क्षेपक अथवा विचारणीय मानते हैं उन टीकाकारों ने इन आधुनिक विद्वानों के समान धृष्टता भी नहीं की। उन्होंने अपनी बुद्धि को कसकर मूल सिद्धान्त के हाद के जितना समीप से समीप जाया जा सका उतना जाने का प्रयत्न किया। किन्तु उन्होंने किसी भी स्थान पर मांस मछली आदि अभक्ष्य पदार्थों की स्वीकार का अर्थ तो किया ही नहीं।

पंचमांग भगवतीसूत्र के टीकाकार श्री अभयदेव सूरि ने तो इसमें आये हुए विवादास्पद सूत्र पाठ का स्पष्टार्थ वनस्पति परक ही स्वीकार किया है। अतः प्राचीन टीकाकारों चूर्णिकारों के मतानुसार भी निर्ग्रन्थ श्रमण मांस भक्षण अथवा मांस भिक्षा करते थे यह कदापि सिद्ध नहीं हो सकता।

अत भगवतीसूत्र के अलावा आचारांग दशवैकालिक, एवं सूयप्रज्ञप्ति आदि अन्य जैनागमों में आने वाले एवं विवादास्पद शब्दों का अर्थ भी वनस्पतिपरक तथा पथ्य न आदि हो निर्ग्रन्थ आचार विचारों के साथ प्राचीन वैद्यक तथा प्राचीन जैनादि ग्रन्थों के अनुसार संगत बैठता है किन्तु मांसपरक सर्वथा असंगत है। यदि किसी आधुनिक विद्वान की यह धारणा हो कि इन सूत्रों की रचना के समय रचनाकार को वनस्पतिपरक [illegible] मांसपरक दोनों ही अर्थ अभिप्रेत थे तो उनकी यह धारणा उपयुक्त [illegible] [illegible] से सर्वथा असत्य ठहरती है। दूसरी बात यह है कि [illegible] श्रमण निर्ग्रन्थ ने मांसाहार ग्रहण किया होता तो उसका वर्णन [illegible] [illegible] साहित्य में अवश्य पाया जाता किन्तु हर्ष का विषय है कि [illegible] जैननिर्ग्रन्थश्रमण ने मांसभक्षण किया हो अथवा मांस [illegible] उसका नाम तक किसी भी प्राचीन भारतीय साहित्य में नहीं [illegible]।

(५) इतने विवेचन से यह बात फलित होती है कि [illegible] भगवती सूयप्रज्ञप्ति दशवैकालिक आदि जैन आगमों [illegible] इन विवादास्पद शब्दों का प्रयोग वनस्पतिपरक [illegible] अर्थ में होता था उतना प्राचीन है। यह समय [illegible] स्वामी का ईसा पूर्व छठा शताब्दी का बैठता है इससे यह स्पष्ट है कि [illegible] में देवर्द्धिगणि क्षमाश्रमण के नेतृत्व में [illegible] संकलित कर लिपिबद्ध किया गया था वह [illegible] की वाणी का बिना किसी फेर फार के संकलन [illegible] जैनों के पास सुरक्षित है।

अत मुझ विद्वानों को चाहिये कि [illegible] निर्ग्रन्थ आचार विचार तथा भगवान [illegible] अर्थ प्रचलित थे उन्हीं के अनुकूल [illegible] अज्ञानता का परिचय न दें।

(६) यदि निर्ग्रन्थपरम्परा में [illegible] होता अथवा जैनागमों में मछली [illegible]

होता तो अन्य धर्मावलम्बियों के साहित्य में जैनधर्म के प्रतिस्पर्द्धी रूप में जैनों पर मांसाहार करने का आक्षेप अवश्य पाया जाता। परन्तु यह बड़े गौरव का विषय है कि जैनेतर साहित्य में जैनों पर इस आक्षेप का सर्वथा अभाव है। मेरे एक मित्र जो एक सुप्रतिष्ठ विद्वान हैं लेखक, वक्ता तथा धर्मोपदेशक हैं उन्होंने इस विषय के लिये यह तर्क किया—'संभव हो सकता है कि जैन धर्मान्ध जैनेतर विद्वानों के हाथ में न जा पाया हो इसलिए हो सकता है कि वे ऐसा आक्षेप जैनों पर न कर पाये हों" उनकी यह दलील कोई युक्तिसंगत प्रतीत नहीं होती क्योंकि यह कभी संभव नहीं हो सकता कि जैन साहित्य जैनेतर विद्वानों के हाथ में न गया हो। यदि थोड़ी देर के लिये ऐसा मान भी लिया जाय तो भी वैदिक, पौराणिक जैन तथा बौद्ध साहित्य का अवलोकन करने से पता चलता है कि अनेक निर्ग्रन्थ श्रमण जैनधर्म का त्याग कर अन्य धर्म सम्प्रदायों में जा मिले। अनेकों ने निर्ग्रन्थ श्रमण की चर्या का त्याग कर अपने नवीन सम्प्रदायों की स्थापना भी की। जब वे जैन धर्मोपासक थे तब उन्होंने जैनागमों का अभ्यास तो अवश्य ही किया होगा। इसका यह मतलब हुआ कि वे जैनागमों तथा निर्ग्रन्थाचारों विचारों से पूर्णरूपेण परिचित थे ऐसा स्पष्ट सिद्ध होता है। यदि जैनागमों तथा जैन आचार विचारों में किंचित मात्र भी मांस मछली आदि अभक्ष्यभक्षण का वर्णन अथवा प्रचलन होता तो वे जैनधर्म के प्रतिपक्षी रूप में जैनों पर अवश्य आक्षेप करते पाये जाते।

(७) निर्ग्रन्थ (जैन) श्रमणों का आचार जनता के समक्ष था क्योंकि जैन मुनि आहार आदि सदा गृहस्थों के यहां से ही ले आते थे एवं लेते हैं। यदि वे कदाचित अनिवार्य अवस्था में भी प्राण्यंग मांस मत्स्यादि का भक्षण करते तो जैनेतर साहित्य में जैनों पर मांसाहार करने का आक्षेप अवश्य पाया जाता। ऐसा न होना ही यह सिद्ध करता है कि निर्ग्रन्थ आचार विचार में प्राण्यंग मांसादि भक्षण का किंचित्मात्र भी अवकाश नहीं।

(८) गौतम बुद्ध जमाली गोशालक ये तीनों भगवान महावीर स्वामी

के समकालीन थे तथा ये सभी प्रथम निर्ग्रन्थपरम्परा में दीक्षित हुए और वर्षों तक निर्ग्रन्थ आचारों का पालन भी करते रहे। बाद में इस परम्परा का त्याग कर अब उन्होंने अपने अपने नवीन पंथों की स्थापनाएँ की तब से, उन्होंने जैनधर्म के प्रतिस्पर्धी के रूप में जैन सिद्धान्तों तथा आचारों का घोर विरोध किया। यद्यपि इन बातों में से बुद्ध के साहित्य के अतिरिक्त किसी अन्य का साहित्य उपलब्ध नहीं है तथापि बौद्ध साहित्य को देखने से इस बात का पता चलता है कि तथागत गौतम बुद्ध ने जब अपने पंथ की स्थापना की उस समय अपने पंथ के प्रचार तथा विस्तार के लिए जैन धर्म के अनुयायियों की ... तथा आदि की कड़ी आलोचना की। शाक्य मुनि गौतम बुद्ध स्वयं तथा उनके भिक्षु प्राणिज मांस मछली आदि मृतमांस का निःसंकोच निमन्त्रण से भक्षण करते थे और ये लोग मृतमांसभक्षण में दोष भी नहीं मानते थे। इनके इन अभक्ष्य पदार्थों के भक्षण करने पर इनके समकालीन निरामिषभोजी महावीरानुयायियों ने उन की ऐसी आचार प्रणाली की कड़ी आलोचना की तथा आक्षेप भी किये। इन आक्षेपकों में जैन भी एक थे। बुद्ध ने अपने इस शिथिलाचार को ढाँकने के लिए तथा अपने धर्मप्रचार के लिए अपने आलोचकों के विरुद्ध अनेक प्रकार से प्रचार किया। इतिहास से यह बात स्पष्ट है कि जैन तथा बौद्ध उस समय परस्पर प्रतिस्पर्धी के रूप में थे। ऐसा होते हुए भी बौद्ध साहित्य में जैनों पर मांसाहार करने का आक्षेप न पाया जाना हमारे इस मत को पुष्टि करता है कि निर्ग्रन्थ (जैन) परम्परा में कदापि प्राणिज मांस मछली आदि अभक्ष्य पदार्थों के खाने का प्रचलन नहीं था।

(९) मात्र इतना ही नहीं परन्तु शाक्यमुनि गौतम बुद्ध ने अपनी निर्ग्रन्थ अवस्था की तपश्चर्या का वर्णन करते हुए मत्स्य मांस मदिरा आदि सेवन करने का निषेध किया [3]। ऐसा होने से निर्ग्रन्थ श्रमणों का मांसाहार न करने का स्पष्ट निर्देश पाया जाना भी इसी बात की पुष्टि करता है कि निर्ग्रन्थ (जैन) परम्पराओं में ऐसे अभक्ष्य पदार्थों के भक्षण का कदापि प्रचलन नहीं था।

(१०) जैन अथवा जैनेतर प्राचीन साहित्य को देखने से यह भी पता लगता है कि सभी सम्प्रदायों के अनेक समर्थ विद्वानों ने अपने पहले सम्प्रदाय का त्याग कर जैनधर्म को स्वीकार किया । जिनमें निग्गंठ नाय पुत्त (श्रमण भगवान महावीर) के मुख्यशिष्य-गणधर इन्द्रभूति आदि ग्यारह ब्राह्मण पंडित ने भी जो चौदह विद्याओं के ज्ञाता थे अपने हजारों शिष्यों के साथ निर्ग्रन्थ श्रमण के पांच महाव्रतों को स्वीकार कर जैन मुनि की दीक्षा ग्रहण की । ये सब जैनधर्म स्वीकार करने से पहले यज्ञों में स्वयं पशुबलि करते थे, दूसरों से करवाते थे तथा इस प्रथा का सर्वत्र प्रचार भी करते थे एवं यज्ञों द्वारा तैयार किये हुए प्राण्यंग मांस को खाना अपना परमधर्म समझते थे। शय्यंभव हरिभद्र आदि अनेक समर्थ विद्वानों ने भी ऐसा ही किया । जैनधर्म को स्वीकार करने के बाद ये सब महान् तपस्वी परमसंयमी तथा नवकोटि अहिंसा के प्रतिपालक बने और समर्थ गीतार्थ जैनाचार्यों के रूप में ख्यात हुए । यदि जैनधर्म के आचार विचारों में किंचित्मात्र भी सामिषाहार को खाना अथवा प्रचार होता तो वे स्वयं परम अहिंसक कदापि न बन पाते । मात्र इतना ही नहीं परन्तु वह जैनों पर यह आक्षेप भी अवश्य करते कि आप जैन लोग स्वयं तो सामिषाहार करते हैं फिर भी अन्य सामिषभोजी सम्प्रदायों की आलोचना क्यों करते हैं ? किन्तु परम गौरव का विषय है कि जैनों पर ऐसा एक भी आक्षेप जैन अथवा जैनेतर साहित्य में दृष्टिगोचर नहीं होता । इस से यह स्पष्ट होता है कि निर्ग्रन्थ (जैन) धर्म में सामिषाहार को किंचित्मात्र भी अवकाश नहीं है ।

(११) जहाँ जहाँ भी जैनधर्म का अधिक प्रभाव रहा वहाँ के अन्य धर्मावलम्बी भी प्राण्यंग मांसादि अभक्ष्य पदार्थों का इस्तेमाल (उपयोग) करने से दूर रहते आ रहे हैं। मात्र इतना ही नहीं परन्तु आज से हजार बारह सौ वर्ष पहले जब बौद्ध लोग गुजरात प्रदेश में आये तब जैनधर्म के आचार तथा विचार के प्रभाव से प्रभावित हो कर उन्हें भी मत्स्य मांसादि के प्राण्यंग मांसपरक अर्थों को वनस्पतिपरक

अय करने के लिए बाध्य होना पड़ा तथा बौद्ध ग्रंथों में बौद्ध भिक्षुओं को प्राप्त मांसादि अभक्ष्य पदार्थों के भक्षण के लिए निषेध करना पड़ा। इससे यह स्पष्ट है कि भूतकाल से लेकर आज तक जैनों में मांसाहार का कोई प्रचार अथवा प्रभाव का अवकाश नहीं रहा। ये सब बातें भगवान महावीर तथा निग्रंथ श्रमणों के कट्टर निरामिषभोजी होने का स्पष्ट प्रमाण है।

(१२) यही कारण है कि मांसाहारी प्रदेशों तथा मांसाहारी देशों में रहने वाले जैन धर्मावलम्बी गृहस्थ भी मत्स्य मांस आदि आज तक कट्टर निरामिषाहारी हैं। मात्र इतना ही नहीं जैन धर्म को जब अर्से से भूल चुकने वाली 'सराक' आदि जातियों का आज भी कट्टर निरामिषाहारी होना उन पर जैनधर्म के आचार तथा विचार की गहरी छाप का ज्वलन्त उदाहरण है।

(१३) भारतवर्ष में जैनधर्म को मानने वाली ओसवाल खंडेलवाल पोरवाल श्रीमाल पल्लीवाल आदि प्रमुख जैन जातियों का निर्माण राजपूतादि मांसाहारी जातियों में से हुआ। जब से इन महानुभावों ने जैनधर्म को स्वीकार किया और ये निग्रंथ (जैन) श्रमणोपासक (श्रावक) बने तब से आज पर्यन्त कट्टर निरामिषाहारी हैं। यदि जैन आचार विचार में मांसाहार की थोड़ी सी भी छूट होती फिर वह चाहे उत्सर्ग से होती अथवा अपवाद से तो ये उपर्युक्त श्रमणोपासक जैन जातियां कदापि आज कट्टर निरामिषभोजी न होतीं। इसके विपरीत बौद्धों के समान ये भी सब सामिषाहारी होते। हम देख चुके हैं कि बुद्धधर्म को स्वीकार करने वाले निरामिषभोजी लोग भी मांसाहारी बन गए तथा जैनधर्म को स्वीकार करने वाले मांसाहारी लोग भी कट्टर निरामिषाहारी बन गये। इससे भी स्पष्ट सिद्ध है कि निग्रंथ-परम्परा में मांसाहार का कभी भी प्रचलन नहीं था और न है।

(१४) जैन तीर्थंकर भगवान महावीर स्वामी तथा शाक्य मुनि तथागत गौतम बुद्ध समकालीन थे और आत्मसाधन के एक ही निग्रंथ

पथ के दो पथिक थे। महात्मा बुद्ध इस पथ से भटक गए और भगवान् महावीर इस पथ को पार कर सफल हुए। भगवान महावीर अपनी आत्मा को शुद्ध पवित्र करने के सम्बन्ध में सर्वथा रहित होकर मोक्ष प्राप्त कर लेने के लिए अमर हो गये तथा महात्मा बुद्ध अपनी चित्त शक्ति को सर्वथा तुच्छ कर लेने के लिए विलुप्त हो गये। इन दोनों के अपने अपने आचार विचारों के अनुकूल ही निग्रंथ (जैन) परम्परा कट्टर निरामिषाहारी है और बौद्ध-परम्परा मांस-मछली आदि सर्वभक्षी है।

(१५) निग्रंथ परम्परा सदा से प्राणिज मांस मछली अण्डे मदिरा आदि अभक्ष्यभक्षण का विरोध करती आई है यही कारण है कि जैन धर्म अन्य मांसाहारी परम्पराओं के समान मांसाहारी देशों में न फैल सका। भारतवर्ष में ही इसका प्रादुर्भाव हो कर भारत में सीमित रहा।

(१६) अतः (क) भाषाशास्त्र के इतिहास के अभ्यासी से यह बात कदापि छिपी नहीं रह सकती कि आचारांग आदि प्राचीन जैन आगमों के रचनाकाल के समय मांस आमिष आदि शब्दों का अर्थ वनस्पतिपरक तथा पक्वान्नों आदि उत्तम खाद्य पदार्थों का किया जाता था। इसलिये इन आगमों में आये हुए मांसादि शब्दों का अर्थ प्राणिज तृतीय धातु मांस का समझना सर्वथा अनुचित है। (ख) जैन आचार विचारों के अनुसार भी इन शब्दों का प्राणिज मांसपरक अर्थ सर्वथा प्रतिकूल है। (ग) जैन परम्परा के आचार सम्बन्धी इतिहास से भी यही बात सिद्ध होती है कि भगवान महावीर स्वामी से पहले के जैन श्रावक जो कि इनके पूर्वकालवर्ती भगवान पार्श्वनाथ आदि के अनुयायी थे वे भी मांसाहारी नहीं थे। उन पार्श्वापत्य श्रावकों का अवशेष रूप 'सराक' जाति का आज भी बंगाल जैसे मांसाहारी देश में सद्भाव और उन का कट्टर निरामिषाहारी होना इस बात का प्रत्यक्ष प्रमाण है। तथा भगवान महावीर के बाद निर्मित होने वाली ओसवाल पोरवाड़ अग्रवाल खंडेलवाल श्रीमाल आदि जैन जातियों का कट्टर निरामिषभोजी होना भी हमारी इस धारणा की पुष्टि करता है। जिस प्रकार जैन श्रावक निरा-

सिखाहारी हैं उसी प्रकार निग्रंथ श्रमण (जैनमुनि) भी सर्वथा एवं सर्वत्र निरामिषभोजी थे और हैं।

ऐसा होते हुए भी अध्यापक कोसाम्बी का यह लिखना कि उन्होंने (जैनों ने) मांसाहार का समर्थन इसी (बौद्ध) के ढंग से किया होगा क्योंकि पूर्वकालीन सन्यासियों के समान जंगल के फूल-फलों पर निर्वाह न करके लोगों की दी हुई भिक्षा पर निर्भर रहते थे और उस समय निर्मांस भोजन भिक्षा मिलना असम्भव था। ब्राह्मण लोग यज्ञ में हजारों प्राणियों का वध करके उनका मांस आस-पास के लोगों में बांटते थे। गांव के लोग देवताओं को प्राणियों की बलि चढ़ा कर उनका मांस खाते थे। इस के अतिरिक्त कसाई लोग ठीक चौराहे पर गाय को मार कर उसका मांस बेचते रहते थे। ऐसी स्थिति में पक्वान्न की भिक्षा पर स्थिर रहने वाले श्रमणों को मांस रहित भिक्षा मिलना कैसे सम्भव हो सकता था।

उनकी यह धारणा सत्यता से कोसों दूर है। क्योंकि श्रमण भगवान महावीर निग्रंथ परम्परा के चौबीसवें तीर्थंकर थे उन से पहले तेईसवें तीर्थंकर भगवान पार्श्वनाथ तथा बाईसवें तीर्थंकर भगवान अरिष्ट नेमि (नेमिनाथ) इत्यादि तेईस तीर्थंकर हो चुके थे जिन्होंने सर्वत्र अहिंसा का प्रचार कर जैन आचार विचारों के पालन करने वाले समाज की स्थापना की थी जो चतुर्विध संघ के नाम से प्रसिद्ध है। इसमें साधु साध्वी श्रावक-श्राविकाओं का समावेश होता है। ये जैन श्रावक श्राविकायें श्रमण भगवान महावीर के समय में इनके द्वारा केवलज्ञान प्राप्त कर धर्म प्रचार प्रारम्भ करने से पहले से विद्यमान थे सहस्र आदि आदि कट्टर निरामिषभोजी थे। इन के अतिरिक्त अन्य निरामिषभोजी सन्यासी श्रमणों के उपासक गृहस्थ भी निरामिषाहारी अवश्य विद्यमान होंगे। भगवान महावीर के माता पिता तथा मामा महाराजा चेटक का परिवार तथा अन्य सगे सम्बन्धी भी निग्रंथ श्रमणों के उपासक थे अर्थात जैन धर्मानुयायी थे।

श्रमण भगवान् महावीर के धर्मप्रचार में भी लाखों की संख्या में गृहस्थों ने जैन धर्म स्वीकार कर लिया था और वे बारह व्रतधारी श्रमणोपासक बन चुके थे। जिससे उस समय में निरामिषभोजी भी सर्वत्र विद्यमान थे।

ऐसी अवस्था में भिक्षा पर निर्भर रहने वाले जैन निर्ग्रंथ श्रमणों को मांस रहित भिक्षा मिलना असंभव मानना कहाँ तक उचित है? पाठक स्वयं सोच सकते हैं।

व्यक्ति तीन कारणों से झूठ बोलता है। अज्ञानवश अथवा राग द्वेषवश। लेखकों में तो की उपयुक्त धारणा सत्य से कोसों दूर होने के कारण इन तीन कारणों में से किसी एक कारण का शिकार अवश्य हुई है। अधिक क्या लिखें।

(१७) मनुष्य का उसके विचारों के साथ गहरा सम्बन्ध है। विचारों के अनुसार ही आचार होता है। जो यह मानता है कि आत्मा नहीं है परलोक नहीं है परमात्मा नहीं है उसका आचार भोग-प्रधान रहता है। जो यह मानता है कि आत्मा है परलोक है आत्मा अपने किए हुए शुभाशुभ कर्मों के अनुसार सुख-दुःख आदि फल को भोगता है, उसका आचार भोगप्रधान न होकर इसके विपरीत त्यागमय होता है। अतः विचारों का मनुष्य के ऊपर गहरा प्रभाव पड़ता है। इसलिए किसी के आचार विचार को जाने बिना उस के विषय में सम्यक् निर्णय नहीं किया जा सकता। महात्मा बुद्ध मृतमांस में दोष नहीं मानते थे किन्तु निग्गंठ नायपुत्त (श्रमण भगवान महावीर) सब प्रकार के प्राण्यंग मांस को त्रस जीवों का पुंज मानते थे। फिर जब हम श्रमण भगवान महावीर के जीवन पर दृष्टिपात करते हैं तो ज्ञात होता है कि वे दीक्षा लेने से पहले गृहस्थाश्रम में ही मांसाहार के सब प्रकार से त्यागी हो चुके थे और निर्ग्रंथ श्रमण की दीक्षा लेने के बाद जब वे सर्वज्ञ सर्वदर्शी हो चुके थे तब उन्होंने मोहनीय कर्म का सर्वथा नाश कर लिया था। उस समय उन्हें अपने शरीर पर किंचित्मात्र भी मोह नहीं

था। वे अपने केवलज्ञान द्वारा यह भी जानते थे कि अभी उनकी आयु सोलह वर्ष और शेष है। वे यह भी अवश्य जानते होंगे कि पित्त ज्वर रक्तपित्त आदि रोगों के शमन करने के लिये वनस्पति से निष्पन्न निर्दोष और प्रासुक औषधियां भी सुलभ प्राप्य हैं। उनके उस समय लाखों की संख्या में निरामिषाहारी गृहस्थ श्रावक अनुयायी तथा उपासक विद्यमान थे। जब छद्मस्थ निग्रंथ श्रमण भी मांसाहार का सर्वथा त्यागी होता है तब तीर्थंकर भगवान का आचार तो उन निग्रंथों से भी बहुत उत्कृष्ट था। ऐसी अवस्था में ऐसा पाप-मूलक मांसाहार वे कैसे ग्रहण कर सकते थे? कहना होगा कि प्रभु महावीर पर मांसाहार का दोषारोपण करना चांद पर थूकने के समान है। फिर भी यदि कोई कहे कि रोग के शमन के लिये भगवान ने मुर्गे का मांस खाया क्योंकि विवादास्पद सूत्र पाठ के अर्थ से भी ऐसा प्रतीत होता है, तो यह दलील या उनकी युक्ति संगत नहीं है।

किसी भी बात का निर्णय करने से पहले इस विषय में लागू पड़ने वाले संयोग तथा आस पास के संयोगों का विचार करके सत्य निर्णय करना शुद्ध विद्वानों का साधु कर्तव्य है। हम इस निबन्ध में अनेक स्थलों पर इस बात के अनेक प्रमाण देते आ रहे हैं कि भगवान महावीर ने प्राणि हिंसा तथा मांसाहार का उग्र विरोध किया था। ऐसे महान अहिंसक को अपने सिद्धान्त की कदर न हो यह कैसे माना जा सकता है?

(१८) जैन सिद्धान्त के अनुसार (१) भगवान महावीर का वज्र ऋषभनाराच संहनन था। (२) उन्होंने छद्मस्थावस्था में घोरातिघोर उपसर्ग तथा परीषह सह कर भी अपने निग्रंथ श्रमण के आचारों का दृढ़ता पूर्वक पालन किया था। (३) उन्होंने मांसाहार को नरकगति में ले जाने वाला बतलाया है। (४) मांसाहारी को कसाई (घातक हिंसक) कहा है जो कि सर्वथा सार्थक है। कसाई शब्द कषायी का प्राकृत पर्यायवाची होता है। इसका आशय यह हुआ कि भगवान महावीर के सिद्धान्तानुसार मांसाहार उत्कृष्ट कषायवान व्यक्ति ही कर सकता है।

श्रमण भगवान महावीर स्वामी तो क्रमश अनानादि अठारह दोषों रहित सर्वज्ञ सर्वदर्शी थे इसलिये कदाचित इनके रोग में मांसाहार गुणकारी भी होता तो भी अहिंसा के आद्य उद्घोषक तथा करुणा के अवतार श्रमण भगवान महावीर कभी भी ऐसे अभक्ष्य पदार्थ को स्वीकार करें यह बुद्धिगम्य तथा श्रद्धागम्य नहीं है। (५) उन्हें तो अपनी देह पर भी ममता नहीं थी। (६) उन्हें यह भी ज्ञान था कि इस रोग में मुर्गे का मांस घातक है। (७) उन्हें उनके रोग शमन के लिये वनस्पतिनिष्पन्न निर्दोष तथा प्रासुक अनुकूल औषधि सुलभ प्राप्य भी थी। ऐसी परिस्थिति में श्रमण भगवान महावीर का मांसाहार ग्रहण करना कदापि संभव नहीं है।

निग्गंठ नायपुत्त (श्रमण भगवान महावीर) अपने सिद्धान्त के विरुद्ध जाने वाला प्राणी का घातक, रोग की प्रकृति के प्रतिकूल तथा अभक्ष्य महापापमूलक वस्तु अपने शिष्य सिंह मुनि द्वारा मंगा कर ग्रहण करें, यह बात समझदार व्यक्ति के गले कदापि नहीं उतर सकती।

(१९) रेवती श्राविका जो धनाढ्य गृहस्थ की स्त्री थी बहुत ही समझदार और बुद्धिमती थी और बारह व्रत धारिणी भी थी। ऐसी उत्कृष्ट श्राविका ऐसा उच्छिष्ट मांस कैसे रांध सकती थी? रांध कर बासी क्यों रखे? फिर भगवान के लिये दे। ये सब बातें कैसे संभव हो सकती हैं?

जो स्वयं रांध कर खाती भी होगी तब वह व्रतधारिणी कैसे हुई? मांस खाने वाली रेवती ऐसे बासी मांस का आहार दान करने से देव गति प्राप्त करे तथा तीर्थंकरनामकर्म उपार्जन करे यह कैसे संभव हो सकता है? शास्त्रकार तो तृतीयांग ठाणांग आगम में कहते हैं कि इस सुपात्रदान के प्रभाव से रेवती श्राविका देवगति में गयी और आगामी चौबीसी में मनुष्यजन्म पाकर इस की आत्मा तीर्थंकर होकर निर्वाण (मोक्ष) पद को प्राप्त करेगी। अतः इससे यह स्पष्ट है कि सम्यग्ज्ञान पूर्वक बारह व्रत धारिणी श्राविका न तो कदापि प्राणीज मांस पका सकती

शब्द अनर्थक बन जाते हैं तथा अनर्थक एकार्थक बन जाते हैं। अनेक शब्दों तथा लिपियों में एक रूप परिवर्तन भी हो जाता है। जो शब्द आज किसी विशेष अर्थ में प्रयुक्त होता है वह शब्द कालांतर में सर्वथा भिन्न अर्थ में प्रयुक्त होने लगता है। सो आज से पच्चीस सौ वर्ष पूर्व मगधदेश में बोली जाने वाली भाषा आज की भाषा से मेल कैसे खा सकती है। अतः गुप्त एवं निष्पक्ष विद्वानों को चाहिये कि वे किसी भी सूत्र पाठ का अर्थ करते समय देश काल परिस्थिति आचार विचार आदि को ध्यान में रखते हुए उन के अनुकूल अर्थ करके अपनी बुद्धिमत्ता का परिचय दें। यही उन के लिये शोभाप्रद है। किन्तु प्राचीन काल के एकार्थक शब्दों का अनर्थक बता कर अर्थ का अनर्थ करने की कृपा न करें।

(२२) वर्तमान समय में विवादास्पद सूत्रपाठों को निकालने का विचार भी ठीक प्रतीत नहीं होता। कारण यह है कि उस प्राचीन समय के सूत्रपाठों को निकाल देने अथवा उन शब्दों का अन्य अर्थ करने से आगमों की प्राचीनता एवं प्रामाणिकता ही समाप्त हो जायगी। श्रमण भगवान् महावीर स्वामी की मौजूदगी में गणधरों द्वारा संकलित किये गये ये प्राचीन आगम जब उन के ९८० वर्ष बाद देवर्द्धिगणि क्षमाश्रमण के नेतृत्व में लिपिबद्ध कर पुस्तकारूढ किये गये थे उस समय इस हजार वर्ष के अन्तर में भाषा शब्दों अर्थों में अनेकविध परिवर्तन भी अवश्य हो चुके थे उस समय लोग प्राचीन अर्थों को भूलने भी लग थे, बाहर से आने वाली अनेक जातियों के भारत में आकर बसने तथा उन के शासनकाल में उनकी भाषा राज्यभाषा के रूप में प्रचार पा जाने से प्रत्येक भाषा में शब्दों का आदान प्रदान होने से उस समय की भाषाओं में अनेक प्रकार के परिवर्तन भी हो चुके थे। आज की हिन्दी गुजराती बंगाली आदि भारतीय भाषाओं का जब हम बारहवीं-तेरहवीं शताब्दी की भाषाओं से मिलान करते हैं तो इनके अन्तर का स्पष्ट भान हो जाता है। इसी प्रकार आज से पच्चीस सौ वर्ष पहले आम आमगंध शब्द का अर्थ प्राण्यंग का कच्चा

पक्ता माम किया जाता था परन्तु आज की बोल चाल की भाषाओं में आम एक फल का नाम प्रसिद्ध है। यह तो हुई भूतकाल की बातें। वर्तमान काल में भी हम देखते हैं कि जिस एक शब्द का किसी अर्थ पंजाब में एक प्रकार का किया जाता है उसी शब्द का अर्थ उत्तर प्रदेश में दूसरी प्रकार का किया जाता है। उदाहरणार्थ 'कुकड़ी' शब्द का अर्थ पंजाब में मुर्गी समझा जाता है और उत्तर प्रदेश के मेरठ आदि जिलों में मक्के के भुट्टे के अर्थ में इसका प्रयोग होता है तथा मारवाड़ में इसका प्रयोग रूई के कात हुए सूत की गुच्छी के लिए होता है। इन सब बातों का विचार करने से यह स्पष्ट है कि उस्भी में प्राचीन जैन आगमों को पुस्तकारूढ़ करते समय भी भाषाविद् शब्दों की समस्या उन गीतार्थ निर्ग्रन्थों के सम्मुख अवश्य थी। यदि वे चाहते तो इन सूत्र पाठों का निकाल अथवा बदल भी देते फिर भी उन्होंने ऐसा क्यों नहीं किया? इस के पीछे उनकी बड़ी दीर्घ दृष्टि थी। यदि वे इन सूत्रपाठों का निकाल अथवा बदल देते तो (१) इन आगमों की प्राचीनता नष्ट हो जाती (२) भगवान् महावीर के गणधरों की मूल भाषा का अभाव हो जाता। (३) प्राचीन अर्द्धमागधी भाषा का इतिहास लुप्त हो जाता इत्यादि अनेक दोष आजाने पर भी यह समस्या हल न हो पाती क्योंकि यदि उस समय भगवान महावीर के एक हजार वर्ष के बाद भाषा तथा शब्दों के अर्थों में कुछ परिवर्तन हो चुका था तो इन आगमों के पुस्तकारूढ़ होने के पन्द्रह सौ वर्ष बाद आज तक भाषाओं और उनके शब्दों के अर्थों में कोई कम परिवर्तन नहीं हुए। ऐसी परिस्थिति में फिर भी वैसी ही समस्या खड़ी रहती और अनेक सूत्र पाठों को आज भी बदलने की आवश्यकता पड़ती और भविष्य में फिर अनेक शब्दों के अर्थ बदलते रहने के कारण यह समस्या वैसी की वैसी ही बनी रहती बार-बार सूत्र पाठों के बदलने से प्राचीन जैनागमों का अस्तित्व ही न रह पाता। इसलिए यही उचित है कि वर्तमान में विद्वानों के सामने जो विवादास्पद सूत्रपाठ हैं उनका अब निग्रंथ (जैन) आचार विचारों तथा प्राचीन भाषा के अर्थों के अनुकूल

शब्द अनेकार्थक बन जाते हैं तथा अनेकार्थक एकार्थक बन जाते हैं। अनेक शब्दों तथा लिपियों में एक दम परिवर्तन भी हो जाता है। जो शब्द आज किसी विशेष अर्थ में प्रयुक्त होता है वह शब्द कालांतर में सर्वथा भिन्न अर्थ में प्रयुक्त होने लगता है। भला आज से पच्चीस सौ वर्ष पहले मगधदेश में बोली जाने वाली भाषा आज की भाषा से मेल कैसे खा सकती है। अतः सुज्ञ एवं निष्पक्ष विद्वानों को चाहिये कि वे किसी भी सूत्र पाठ का अर्थ करते समय देश काल परिस्थिति आचार विचार आदि को लक्ष्य में रखते हुए उन के अनुकूल अर्थ करके अपनी बुद्धिमता का परिचय दें। यही उन के लिये शोभास्पद है। किंतु प्राचीन काल के एकार्थक शब्दों को अनेकार्थक बना कर अर्थ का अनर्थ करने की कृपा न करें।

(२२) वर्तमान समय में विवादास्पद सूत्रपाठों को निकालने का विचार भी ठीक प्रतीत नहीं होता। कारण यह है कि उस प्राचीन समय के सूत्रपाठों को निकाल देने अथवा उन शब्दों को बदल देने से जैनागमों की प्राचीनता एवं प्रामाणिकता ही समाप्त हो जायगी। श्रमण भगवान महावीर स्वामी की मौजूदगी में गणधरों द्वारा संकलित किये गये ये प्राचीन आगम जब उन के ९८० वर्ष बाद देवर्द्धिगणि क्षमाश्रमण के नेतृत्व में लिपिबद्ध कर पुस्तकारूढ किये गये थे उस समय इस हजार वर्ष के अन्तर में भाषा, शब्दों अर्थों के अनेकविध परिवर्तन भी अवश्य हो चुके थे, उस समय लोग प्राचीन अर्थों को भूलने भी लगे थे, बाहर से आने वाली अनेक जातियों के भारत में आकर बसने तथा उन के शासनकाल में उनकी भाषा राज्यभाषा के रूप में प्रचार पा जाने से प्रत्येक भाषा में शब्दों का आदान प्रदान होने से उस समय की भाषाओं में अनेक प्रकार के परिवर्तन भी हो चुके थे। आज की हिंदी गुजराती बंगाली आदि भारतीय भाषाओं का जब हम बारहवीं-तेरहवीं शताब्दी की भाषाओं से मिलान करते हैं तो इनके अन्तर का स्पष्ट भान हो जाता है। इसी प्रकार आज से पच्चीस सौ वर्ष पहले आम आमगंध शब्द का अर्थ प्राणांग का कच्चा

पक्का मांस किया जाता था परन्तु आज की बोल चाल की भाषाओं में आम एक फल का नाम प्रसिद्ध है। यह तो हुई भूतकाल की बातें। वर्तमान काल में भी हम देखते हैं कि जिस एक शब्द का विशेष अर्थ पंजाब में एक प्रकार का किया जाता है उसी शब्द का अर्थ उत्तर प्रदेश में दूसरी प्रकार का किया जाता है। उदाहरणार्थ 'कुक्कुडी' शब्द का अर्थ पंजाब में मुर्गी समझा जाता है और उत्तर प्रदेश के मेरठ आदि जिलों में 'मकड़ी के सूत' के अर्थ में इसका प्रयोग होता है तथा मारवाड़ में इसका प्रयोग रूई के कातने हुए सूत की गुच्छी के लिए होता है। इन सब बातों का विचार करने से यह स्पष्ट है कि वलभी में प्राचीन जैन आगमों को पुस्तकारूढ़ करते समय भी शब्दादिक बदलने की समस्या उन गीतार्थ निर्ग्रन्थों के सम्मुख अवश्य थी। यदि वे चाहते तो इन सूत्र पाठों को निकाल अथवा बदल भी देते फिर भी उन्होंने ऐसा क्यों नहीं किया? इस के पीछे उनकी बड़ी दीर्घ दृष्टि थी। यदि वे इन सूत्रपाठों को निकाल अथवा बदल देते तो (१) इन आगमों की प्राचीनता नष्ट हो जाती (२) भगवान महावीर के गणधरों की मूल भाषा का अभाव हो जाता। (३) प्राचीन अर्द्धमागधी भाषा का इतिहास लुप्त हो जाता इत्यादि अनेक दोष आजाने पर भी यह समस्या हल न हो पाती, क्योंकि यदि उस समय भगवान् महावीर के एक हजार वर्ष के बाद भाषा तथा शब्दों के अर्थों में कुछ परिवर्तन हो चुका था तो इन आगमों के पुस्तकारूढ़ होने के पश्चात् भी वह बाद आज तक भाषाओं और उनके शब्दों के अर्थों में कई कम परिवर्तन नहीं हुए। ऐसी परिस्थिति में फिर भी वैसी ही समस्या खड़ी रहती और अनेक सूत्र पाठों का आज भी बदलने की आवश्यकता पड़ती और भविष्य में फिर अनेक पाठों के अर्थ बदलते रहने के कारण यह समस्या ज्यों की त्यों ही बनी रहती बार बार सूत्र पाठों के बदलने से प्राचीन जैनागमों का अस्तित्व ही न रह पाता। इसलिये यही उचित है कि वर्तमान में विद्वानों के सामने जो विवादास्पद सूत्रपाठ हैं उनका अर्थ निर्ग्रन्थ (जैन) आचार विचारों तथा प्राचीन भाषा के अर्थों के अनुकूल

अथ करके पुन विद्वान अपने कर्तव्य का पालन करें। सारांश यह है कि सूत्र-
पाठ का विपरीतार्थ करने से बहुत बात विपरीत हो जाती हैं। किसी बात का समाधान होना तो दूर रह जाता है परन्तु कई प्रकार की उलझनें उपस्थित हो जाती हैं। भगवतीसूत्र के इस विवादास्पद सूत्रपाठ का विपरीतार्थ करके अध्यापक कौशाम्बी जी पटेल गोपालदास तथा उन के अनुयायी विद्वानों ने अपनी विद्वत्ता को बट्टा लगाया है। क्योंकि भगवान महावीर के रोग में ली जाने वाली औषध का मांसपरक अर्थ चिकित्सा शास्त्र निर्ग्रंथ आचार विचार श्रमण भगवान महावीर की जीवनचर्या समय, परिस्थिति आदि सब से प्रतिकूल है। अधिक क्या लिखें ?।

इस विवेचना से विद्वान पाठकगण समझ सकेंगे कि इस सूत्रपाठ का वर्तमान कालीन अर्थ करके गोपालदास पटेल तथा अध्यापक धर्मानन्द कौशाम्बी ने कैसी अक्षम्य भूल की है ?।

अतः भारत सरकार की साहित्य एकाडेमी को चाहिये कि वह कौशाम्बीकृत 'भगवान बुद्ध' नामक पुस्तक को राष्ट्र के लिये अशान्ति-जनक घोषित कर जप्त करे। इसी में भारतसरकार की प्रतिष्ठा निहित है। सुज्ञेषु किं बहुना।